भाकपा (मा.ले.) (पीपुल्स वार) : एक आलोचना

भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुपों में से एक, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) (पीपुल्स वार) ने मार्च 2001 में अपनी कांग्रेस की और इसे 9वीं (दूसरी) कांग्रेस का नाम दिया। इसके पहले 1999 में इसने अपने को कम्युनिस्ट आंदोलन को पुनसंगठित करने वाले एक ग्रुप से, केन्द्रीय सांगठनिक कमेटी (COC) से, पार्टी कहना शुरू कर दिया था । अब अपनी पार्टी की कांग्रेस को 9वीं (दूसरी) कांग्रेस का नाम देकर उसने भारत के समूचे कम्युनिस्ट आंदोलन का एकमात्र वारिस होने का दावा पेश कर दिया है। वैसे तो हर किसी को खुद को कोई भी नाम देने का, कोई भी तमगा पहनाने का अधिकार है, परन्तु बात यदि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन जैसी करोड़ों लोगों की जिन्दगी से सम्बंध रखने वाली पूरी विरासत का हो, तो बाकी लोगों का भी हक बनता है कि वे इस पर अपना विरोध दर्ज करें। पीपुल्स वार ग्रुप की यह कार्यवाही संकीर्ण ग्रुप मानसिकता और बड़े पार्टी संगठन होने के दंभ का द्योतक है। यह भारत के कम्युनिस्ट आंदोलन को आगे बढ़ाने के बजाय एक अनावश्यक बाधा ही साबित होगी ।

परन्तु इस बिन्दु पर फिलहाल इतने तक ही सीमित रहते हुए हम आगे बढ़ते हैं और देखते हैं कि इस ग्रुप की कांग्रेस ने अपने लिए जो कार्यक्रम स्वीकार किया तथा जो रणनीति और रणकौशल निर्धारित किया वह भारतीय क्रांति की आज की आवश्यकताओं के हिसाब से कितना मौजूं है। यह इसलिए और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय क्रांति का कार्यक्रम तथा रणकौशल आज भी क्रांतिकारी खेमे में भारी विवाद का विषय बना हुआ है तथा आंदोलन की टूट-फूट और बिखराव का मूल कारण है। इस पर गंभीर वाद-विवाद ही एकीकृत सोच और एकीकृत पार्टी निर्माण की ओर ले जा सकता है । केवल इसी तरह एकीकृत अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन और निर्माण की ओर आगे बढ़ा जा सकता है।

लेकिन इस पर विस्तृत बात करने से पहले हमें विचारधारा के एक बिन्दु पर बात करनी पड़ेगी क्योंकि इस कांग्रेस ने माओ विचारधारा के बदले माओवाद शब्द अपनाने का फैसला लिया है।

I

माओवाद या माओ विचारधारा ?

पीपुल्स वार ग्रुप की कांग्रेस ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद पर अपने एक प्रस्ताव में यह कहा है कि मार्क्सवाद एक विज्ञान है तथा सभी विज्ञानों की तरह यह भी पिछले 150 सालों में विकसित होता तथा समृद्ध होता रहा है । इसने इस बीच दो बार गुणात्मक छलांग लगाई है – एक बार लेनिन तथा दूसरी बार माओ के योगदान के द्वारा।

इसके बाद प्रस्ताव बताता है कि माओ ने मार्क्सवाद के तीनों क्षेत्रों–दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा समाजवाद में महत्वपूर्ण योगदान किया है और वह इसका किंचित विस्तार से वर्णन करता है। इसके बाद यह प्रस्ताव कहता है कि ऐसे में कोई कारण नहीं

है हम इसे माओवाद न कहें :

> " ...अतः, इस तथ्य को देखते हुए कि कामरेड माओ ने मार्क्सवाद – लेनिनवाद को एक नये तथा ऊंचे धरातल पर पहुंचा दिया है, इसका कोई ठोस कारण नहीं है कि हम इसे माओवाद न कहें। माओवाद शब्द ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद के एक ऊंचे स्तर पर विकास को सही तरह से अभिव्यक्त करेगा ।" ('Resolutions of the IX (2nd) Congress', Page-10, अनुवाद हमारा)

लेकिन कारण न होने के नकारात्मक तर्क से आगे बढ़कर यह कांग्रेस कोई सकारात्मक तर्क नहीं देती कि क्यों आज माओ विचारधारा को माओवाद कहा जाए, सिवाय इसके कि यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद का एक ऊंचे स्तर पर विकास है। लेकिन यह बात तो माओकालीन चीन की कम्युनिस्ट पार्टी से लेकर अभी तक सभी को पता रही है । फिर इसमें नया क्या है? कांग्रेस खुद भी मानती है कि इसमें कुछ भी नया नहीं है और उसका माओवाद से वही आशय है जो माओ – विचारधारा से रहा है । प्रस्ताव कहता है:

> " हालांकि माओ विचारधारा और माओवाद की हमारी समझ एक ही रही है, हम सोचते हैं कि माओवाद ज्यादा सुसंगत है। हम माओ विचारधारा को मार्क्सवाद – लेनिनवाद की एक और ऊंची मंजिल मान रहे हैं, इस अर्थ में कि यह मार्क्सवादी-लेनिनवादी विज्ञान के विकास में एक गुणात्मक छलांग है । लेकिन साथ ही, हमें उन मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों को कम क्रांतिकारी नहीं समझना चाहिए जो माओ – विचारधारा की सार्वभौम सत्यता को स्वीकार करते हुए इसका इस्तेमाल जारी रखती है।" (वही, पृष्ठ-11)

यह सब प्रकारान्तर से इस बात को स्वीकार करना है कि माओ विचारधार से माओवाद में रूपान्तरण के लिए वास्तव में 'कोई ठोस कारण नहीं है'। मूलतः महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के सिद्धान्त तथा व्यवहार के लिए, लेकिन साथ ही अन्य महत्वपूर्ण योगदानों के लिए ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद के साथ माओ विचारधारा की बात की जाती है । मार्क्सवाद –लेनिनवाद–माओ विचारधारा कहने का मतलब ही रहा है कि यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद को समेटते हुए उससे आगे की कोई विचारधारा है। माओ कालीन चीन की कम्युनिस्ट पार्टी से लेकर आज तक यह इसी रूप में प्रचलित रहा है और कुछ थोड़े से लोगों को छोड़कर बाकी तमाम लोग उसे इसी रूप में इस्तेमाल करते रहे हैं क्योंकि यह अपने से जुड़े हुए अर्थ को बखूबी अभिव्यक्त कर देता है । जिन कुछ लोगों ने माओ विचारधारा के बदले माओवाद कहना शुरू किया है उनमें से कुछ ने मार्क्सवाद–लेनिनवाद–माओवाद के आगे अपने नाम का पथ या विचारधारा शब्द जोड़ना भी शुरू कर दिया है । हम उम्मीद करते हैं कि कम से कम पीपुल्स वार की ऐसी कोई मंशा नहीं है ।

एक खास अर्थ रखने वाले शब्द इतिहास में रूढ़ हो जाते हैं । यहां तक कि बहुत भौंड़े होते हुए भी वे बहुत लोकप्रिय हो जाते हैं, उन अर्थों में जो उनका शाब्दिक अर्थ कतई नहीं होता । इसका सबसे शानदार उदाहरण है 'बोल्शेविक' शब्द। रूस की कम्युनिस्ट पार्टी की एक घटना (दूसरी पार्टी कांग्रेस में लेनिनपंथियों का बहुमत) से पैदा हुआ यह शब्द (शाब्दिक अर्थ बहुमतवादी) पूरे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में सबसे ज्यादा प्रचलित और लोकप्रिय शब्दों में है । यह अकेला शब्द क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन की लेनिनवादी परम्परा को अभिव्यक्त कर देता है। अब कोई मांग कर सकता है कि हम लेनिनवाद के बदले बोल्शेविकवाद क्यों न इस्तेमाल करें । वैसे इतिहास में देखा जाए तो यह लेनिनवाद शब्द के पहले से विद्यमान है और स्तालिन द्वारा लेनिनवाद परिभाषित और स्थापित किए जाने के बहुत बाद तक पूरी दुनिया में ज्यादा प्रचलित था। लेकिन हममें से सारे लोग एक स्वर से इस मांग को ठुकरा देंगे ।

आज माओ विचारधारा भी इसी तरह प्रचलित और स्थापित शब्द है जो अपने साथ जुड़े अर्थ को बखूबी अभिव्यक्त करता है । ऐसे में इसे बदलकर माओवाद कहने का कोई ठोस कारण नहीं है ।

वैसे पीपुल्स वार की इस कांग्रेस को यह एहसास था कि 'वाद' को 'युग' से जोड़ने का विवाद मौजूद है। इस तरह एक ही 'युग' रहते हुए नये 'वाद' के आने की बात का विरोध किया जाएगा । इस विवाद की जड़ें स्टालिन के इस कथन में है कि 'लेनिनवाद साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियों के युग का मार्क्सवाद है।' प्रस्ताव कहता है:

> "किसी 'वाद' को युग से जोड़ने पर विवाद मौजूद है । केन्द्रीय कमेटी महसूस करती है यह विवाद अनावश्यक है । साम्राज्यवादी युग से लेनिनवाद को जोड़ने वाली स्टालिन की परिभाषा को यांत्रिक रूप से नहीं लेना चाहिए कि विज्ञान के नये चरण का उदय होने के लिए युग के चरित्र में परिवर्तन होना पूर्वशर्त है ।" (वही, पृष्ठ-11)

लेकिन आप भले ही इसे अनावश्यक समझे, लोग तो 'विवाद' करेंगे। जब आप यह कहेंगे कि चूंकि माओ विचारधारा मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विकास में गुणात्मक छलांग है, इसलिए इसे माओवाद कहा जाना चाहिए तो लोग फौरन कहेंगे ही कि स्टालिन ने लेनिनवाद को समूचे साम्राज्यवादी युग के लिए परिभाषित किया था, इसलिए बिना युग बीते हुए नया वाद नहीं आ सकता । यदि यह आपको यांत्रिक लगता है तो लोग आपको यह याद दिलाएंगे कि कम से कम माओकालीन चीन की कम्युनिस्ट पार्टी या स्वयं माओ इस तरह की यांत्रिकता के शिकार नहीं थे ।

जो हो, यह सारा कुछ दिखाता है कि माओ विचारधारा को माओवाद कहने के लिए कोई ठोस कारण नहीं है और हमें माओ विचारधारा जैसे अच्छे, पुराने शब्द का ही इस्तेमाल करना चाहिए ।

यहां एक चीज पर और गौर कर लें और यह हमारे कार्यक्रम और रणनीति-रणकौशल संबंधी वाद-विवाद के लिए महत्वपूर्ण है। जैसा कि इसी प्रस्ताव ने ही ठीक नोट किया है माओ विचारधारा शब्द का सबसे पहले प्रयोग चीनी क्रांति की विजय के पहले (1945 की सातवीं कांग्रेस में) किया गया था । तब इसका आशय था चीन की ठोस परिस्थितियों में मार्क्सवाद – लेनिनवाद के सार्वभौमिक नियमों को ठोस तरीके से लागू करना जिसका परिणाम था चीन में नयी जनवादी क्रांति की अवधारणा या ज्यादा सही कहें तो दीर्घकालीन लोक युद्ध वाले चीनी क्रांति के रास्ते की अवधारणा । तब नव जनवाद का सिद्धान्त (बुर्जुआ जनवादी क्रांति को मजदूर-किसान संश्रय पर आधारित सर्वहारा के नेतृत्व में पूरा करते हुए समाजवाद की ओर प्रस्थान) तो आम था परन्तु इसने चीन में जो रास्ता ग्रहण किया था, वह सारी दुनिया में नया था । इस रास्ते को सर्वोतमुखी ढंग से परिभाषित करने के लिए ही तब माओ विचारधारा शब्द का इस्तेमाल किया गया था ।

लेकिन जैसा कि तब ही स्पष्ट था, यह मार्क्सवाद - लेनिनवाद के आम सिद्धान्तों को ठोस परिस्थितियों में लागू करना था । यह कोई आम, सार्वभौमिक नियमों की खोज नहीं थी। ज्यादा से ज्यादा कहा जा सकता है कि मिलती-जुलती परिस्थितियों में वही रास्ता अपनाया जा सकता था, लेकिन वह भी उदाहरण के तौर पर, नियम के तौर पर नहीं। खुद माओ ने चीनी क्रांति के रास्ते को महज संदर्भ सामग्री के तौर पर ग्रहण करने की सलाह दी, आम नियम के तौर पर नहीं। माओ अच्छी तरह जानते थे कि हर क्रांति ने अपना अलग रास्ता अपनाया है। अतः पिछली क्रांतियों का रास्ता केवल संदर्भ सामग्री का ही काम दे सकता है, आम सिद्धान्त या नियम का नहीं। यानि चीन की क्रांति का दीर्घकालीन लोकयुद्ध का रास्ता

कुछ इस तरह का नियम नहीं है जैसे कि 'सभी क्रांतियों का मूल प्रश्न राज्य सत्ता का प्रश्न होता है' या 'समाजवादी समाज में सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होगी'। इस तरह के आम नियम और सिद्धान्त ही मार्क्सवादी विचारधारा का निर्माण करते हैं। किसी ठोस परिस्थिति में ये नियम कैसे लागू होते हैं, वे विचारधारा का निर्माण नहीं करते क्योंकि वे सार्वभौमिक नहीं होते (यहां किसी आपत्ति से बचने के लिए हम पहले ही कह दें कि हर सार्वभौमिकता सापेक्ष होती है)। इसीलिए आम तौर पर कहा जाता है कि कार्यक्रम और रणनीति तथा रणकौशल (क्रांति का रास्ता भी) के सवाल विचारधारा के सवाल नहीं होते। वे विचारधारा के आम सिद्धान्तों को ठोस परिस्थितियों में लागू करने से पैदा होते हैं और परिस्थितयों के हिसाब से देश-काल बदलते ही बदल जाते हैं। देश काल के हिसाब से कार्यक्रम व रणनीति तथा रणकौशल में परिवर्तन न केवल वांछनीय है, बल्कि अनिवार्य है। इसके बिना क्रांति को अंजाम नहीं दिया जा सकता। उनमें परिवर्तन करना विचारधारा के आम सिद्धान्तों में परिवर्तन करना नहीं है। इसलिए उनमें परिवर्तन को किसी भी तरह विचारधारा में परिवर्तन या संशोधनवाद नहीं कहा जा सकता।

इस तरह कहा जाए तो आज माओ विचारधारा का वह अर्थ नहीं है जो 1945 में था। आज माओ विचारधारा का सर्वोपरि अर्थ है महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का सिद्धान्त। 'महान बहस' में मार्क्सवादी विचारधारा की रक्षा करते हुए उसमें सूत्रित कुछ नये विचार भी माओ विचारधारा का हिस्सा बनते हैं। इनमें भी सबसे महत्वपूर्ण वे हैं जिन्होंने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के बीज का काम किया। चीनी नवजनवादी क्रांति का कार्यक्रम और उसका रास्ता माओ विचारधारा का हिस्सा नहीं है। हां, इन्हें लागू करते हुए माओ ने जिन आम नियमों की खोज की वे जरूर माओ विचारधारा का हिस्सा हैं, मसलन 'व्यवहार के बारे में' 'अंतरविरोधों के बारे में' संयुक्त मोर्चे को बनाने और उसके चलाने के बारे में आम नियम, क्रांतिकारी युद्धों के संचालन के बारे में आम नियम, इत्यादि। हमें माओ विचारधारा को इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए।

II

नवजनवादी क्रांति का कार्यक्रम या कुछ और ?

पीपुल्स वार की इस कांग्रेस के दस्तावेजों में एक चीज बार-बार उभर कर आती है। वह यह है: इन सारे दस्तावेजों में एक स्वयं सिद्ध प्रस्थापना (axiom) हैं, इससे निकाले गये दो निष्कर्ष (deductions) हैं तथा फिर अन्य सवालों पर इन निष्कर्षों से उपनिष्पत्तियां (derivatives) निकाली गई हैं। स्वयं सिद्ध प्रस्थापना यह है कि भारत एक अर्द्ध - सामंती अर्ध - औपनिवेशिक देश है । इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं – एक, भारत में नवजनवादी क्रांति होगी तथा दो, इस क्रांति का रास्ता दीर्घकालीन लोक युद्ध व आधार क्षेत्र का रास्ता होगा। इनसे निकलने वाली उपनिष्पत्तियां इस तरह की हैं कि चुनावों में भागीदारी नहीं करनी चाहिए, देश के सबसे पिछड़े हिस्सों में काम केन्द्रित करना चाहिए इत्यादि ।

लेकिन यहां जिसे स्वयं सिद्ध प्रस्थापना माना गया है, वही गलत है । इसके बारे में पिटी-पिटाई बातें दुहराने के अलावा जब भी कोई वस्तुगत वर्णन करने का प्रयास किया गया है तो वह इस प्रस्थापना के विरूद्ध जाता दिखता है । यानि तथ्यों का वर्णन मात्र प्रस्थापना को खारिज करने लगता है। इन सबके चलते ये दस्तावेज अंतरविरोधों का पुलिंदा बन कर रह गये हैं। वैसे इसमें आश्चर्य भी कुछ नहीं है । जब भी पांव को जूते के हिसाब

से काटने का प्रयास किया जाएगा, परेशानी खड़ी होगी ही । आइये देखें कि कैसे पीपुल्स वार द्वारा प्रस्तुत तथ्य ही उसकी प्रस्थापना को खारिज करते हैं ।

अर्ध-सामंती अर्ध-औपनिवेशिक भारत की स्वयं सिद्ध प्रस्थापना की एक बुनियादी थीसिस यह है कि भारत का पूंजीपति वर्ग दो हिस्सों में विभाजित रहा है – एक दलाल नौकरशाह पूंजीपति वर्ग तथा दूसरा राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग । दलाल नौकरशाह पूंजीपति वर्ग बड़ा पूंजीपति वर्ग है तथा वही भारत में प्रभुत्वशाली है । वह पूर्णतया साम्राज्यवाद पर निर्भर है तथा उसकी सेवा करते हुए अपनी सेवा करता है । उसके चरित्र में आजादी से पहले और बाद में कोई परिवर्तन नहीं आया है तथा इसी कारण भारतीय समाज में भी औपनिवेशिक से अर्ध-औपनिवेशिक हो जाने के अलावा कोई परिवर्तन नहीं आया है ।

इस थीसिस के पीछे भी दो मान्यताएं हैं। एक तो यह कि साम्राज्यवाद के द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कमजोर होने व पीछे हटने के बावजूद उसके प्रभुत्व में कोई परिवर्तन नहीं आया है तथा दलाल नौकरशाह पूंजीपति वर्ग चूंकि दलाल होता है अतः अपने मालिक के खिलाफ वह नहीं जा सकता। वह हमेशा मालिक की सेवा करता है। वह अपने हितों को मालिक के हितों पर कुर्बान कर देता है या ज्यादा सही कहें तो अपने अलग हित साधने की उसकी हैसियत नहीं होती। लेकिन खुद पीपुल्स वार द्वार प्रस्तुत तथ्य इन दोनों ही मान्यताओं से मेल नहीं खाते । आइये देखें; कैसे !

> "कामरेड स्टालिन के मार्गदर्शन में सोवियत संघ के नेतृत्व में विश्व की जनता के हाथों फासीवादी ताकतों की जबर्दस्त हार; पूर्वी यूरोप में लोक जनवादी सत्ता के उभार, चीनी क्रांति की दुनिया को हिला देने वाली विजय और लातिनी अमरीका, अफ्रीका और एशिया के शक्तिशाली राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों ने **साम्राज्यवाद को गहरी चोट पहुंचाई और उसे काफी हद तक कमजोर बना दिया । साम्राज्यवाद को अपना अस्तित्व बचाने के लिए पीछे हटना पड़ा ।** साम्राज्यवाद ने अपने उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों में अपने प्रत्यक्ष शासन को धीरे-धीरे छोड़ दिया और साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी द्वारा शोषण को और ज्यादा तीव्र बनाने के वाहन के रूप में स्थानीय शोषक वर्गों को खड़ा किया। एक नये राजनीतिक आधार पर साम्राज्यवादी आधिपत्य को स्थापित किया गया। इस बदली हुई परिस्थिति में शोषण व नियंत्रण के नव-औपनिवेशिक रूप के आधार पर उपनिवेश, अर्ध-उपनिवेशों में बदल गये।" ('Party Programme CPI (ML) (People's War)', Section-6, adopted in the 9th (2nd) congress, अनुवाद व जोर हमारा)

> "दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद अमरीकी साम्राज्यवाद के अलावा विजयी या पराजित, अन्य सभी **साम्राज्यवादी ताकतें बेहद कमजोर हो गई थी।** अब तक की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी ताकत ब्रिटिश साम्राज्यवाद को दूसरे दर्जे में धकेल दिया गया था और अमरीकी साम्राज्यवाद ने, अभूतपूर्व विकास के दौर से गुजर कर स्वयं को महाशक्ति व साम्राज्यवादी खेमे के नेता के रूप में स्थापित कर लिया था..." (वही, Section-9, अनुवाद एवं जोर हमारा)

इस वर्णन से ही साफ है कि दुनिया 1945 के बाद वह नही रही, जो वह द्वितीय विश्व युद्ध के पहले थी। विश्व युद्ध, समाजवाद और राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों ने साम्राज्यवाद को काफी कमजोर बना दिया, इतना कि उसे पीछे हटना पड़ा ।

उसे अपने शोषण का रुप बदलना पड़ा तथा उसे नये राजनीतिक आधार पर स्थापित करना पड़ा । अब सीधी सी बात है कि इतना बड़ा परिवर्तन अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। यह परिवर्तन अपने साथ लाजिमी तौर पर अन्य परिवर्तनों को ले आएगा ।

यहां साथ ही यह याद रखने की बात है कि यह परिवर्तन अस्थाई नहीं था । समाजवादी खेमा व राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन पचास के दशक के मध्य तक बने रहे । 1956 में सोवियत संघ में पूंजीवदी पुनर्स्थापना के बाद भी चीन समाजवादी बना रहा तथा राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष चलते रहे । 60 के दशक अंत में सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद के पैदा होने के साथ तीखे साम्राज्यवादी अंतर्विरोध पैदा हुए जो राष्ट्र मुक्ति के लिये फायदेमंद थे क्योंकि आपसी प्रतिद्वन्द्विता से साम्राज्यवादी प्रभुत्व कमजोर होता था । ऐसे में यह सोचना कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद के कमजोर होने और पीछे हटने से कोई फर्क नही पड़ता, एक दम गलत है । यदि कोई फर्क नही पड़ना था तो साम्राज्यवाद पीछे हटा ही क्यों ? यदि शोषण के नये रूप से कोई फर्क नहीं पड़ना था तथा अगर वह पहले से भी ज्यादा खतरनाक था तो उसे पीछे हटकर उसे क्यों अपनाना पड़ा ? क्या उपनिवेश से नव उपनिवेश पर आना किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन का द्योतक नहीं है ? और यदि है तो उसका क्या मतलब है ?

पीपुल्स वार द्वारा अपने 'रणनीति और रणकौशल' (strategy & tactics) दस्तावेज में स्टालिन का एक उद्धरण दिया गया है जिसमें स्टालिन यह कहते हैं कि हमें शत्रु वर्ग के बीच के हर अंतर्विरोध का फायदा उठाना चाहिए तथा अत्यल्प काल के लिए ढुलमुल संश्रयकारी का भी इस्तेमाल कर लेना चाहिए। इसके लिए निश्चित तौर पर यह आवश्यक होगा कि हम छोटे से छोटे परिवर्तन को भी हिसाब में लें और उससे पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन करें । लेकिन यहां हम उल्टी बात देखते हैं । यहां साम्राज्यवाद के कमजोर होने और उसके पीछे हटने जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन को भी कुछ इस तरह पेश किया जाता है जैसे उससे कोई फर्क न पड़ा हो ।

एक बार यदि हम साम्राज्यवाद के कमजोर होने, पीछे हटने तथा उपनिवेश से नव-उपनिवेश पर आने को महत्वहीन मान लें तो फिर चीजें काफी आसान हो जाती हैं । तब सीधा सा निष्कर्ष निकलता है कि साम्राज्यवाद में इस महत्वपूर्ण परिवर्तन से अन्य जगह कोई परिवर्तन नहीं हुआ । इतिहास में कोई गति नही हुई । ये महत्वपूर्ण परिवर्तन इतिहास में कोई गति लाने में असमर्थ रहे । यह सब इतना अजीबोगरीब और अधिभूतवादी है कि सहसा विश्वास नहीं होता । परन्तु हमारे क्रांतिकारी आंदोलन का साहित्य देख जाइये, ढेरों जगह आपको यही मिलेगा । साम्राज्यवाद कमजोर होने से पहले के उपनिवेशों पर अपनी पकड़ और मजबूत बना लेता है । वह पीछे हट कर अपने शोषण को और तीव्र कर देता है । क्या कार्य – कारण संबंध है ! क्या अनोखा द्वन्दवाद है !

सच्चाई उलटी है। साम्राज्यवाद के कमजोर होने और पीछे हटने से आजाद हुए उपनिवेशों के शासकों को काफी जगह (space) मिली तथा अन्य उपनिवेशों का आजाद होना आसान हुआ । इसी तरह पहले समाजवादी खेमे तथा बाद में सामाजिक साम्राज्यवाद की उपस्थिति ने इनकी सौदेबाजी की ताकत को काफी बढ़ाया । जिसका इन्होंने फायदा उठाया। इस सबने पहले के उपनिवेशों, अर्ध-उपनिवेशों के शासकों के सामने वे मौके उपलब्ध कराये जिससे वे अपना व अपने देश का पूंजीवादी विकास कर सकें।

ऐसा नहीं है कि पीपुल्स वार को यह सब पता नहीं है ।बस, वह उसे स्वीकार नहीं करना चाहता । जरा देखिये कि पिछले कुछ वर्षों में, तीसरी दुनिया के शासक वर्गों के अमरीकी साम्राज्यवाद से रिश्तो में पीपुल्स वार को तथ्यतः क्या दिखाई देता है :

> "..... पहले से भिन्न, 1998 में इराक पर सैनिक हमलों के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने आप को पूर्ण अलगाव में पाया, केवल ब्रिटेन उसे पूर्ण सहयोग दे रहा था । कुवैत को छोड़ कर समस्त अरब जगत ने इराक पर इस नये हमले की खिलाफत की । अपनी जनता के अमेरिका विरोधी प्रदर्शनों से घबरा कर

सऊदी अरब, मिश्र व तुर्की की चापलूस सरकारों ने भी अमरीकी नीति की खिलाफत की और इराक पर अमरीकी हमलों के लिये अपनी भूमि उपलब्ध करवाने से इंकार किया। क्यूबा, ईरान एवं लीबिया को अलगाव में डालने के उसके प्रयास न केवल यूरोप में विफल हुए हैं **बल्कि अफ्रीका के राज्य अध्यक्षों ने सरे आम अमरीकी प्रतिबंधों की अवहेलना की है** । अमरीकी नीति को सबसे करारा झटका तब लगा जब दिसम्बर 1997 में ' ऑर्गनाइजेशन ऑफ इस्लामिक कॉन्फ्रेंस' (OIC) ने अपना आठवां शिखर सम्मेलन सफलता पूर्वक सम्पन्न किया। इस सम्मेलन में, अमरिकी दबाव के बावजूद न केवल सभी 55 सदस्य-राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों ने हिस्सेदारी की बल्कि सम्मेलन ने अगले तीन वर्षों के लिये तथाकथित बदमाश राज्य ईरान को अपना सभापति चुना। **सम्मेलन ने पश्चिम ऐशियायी शांति प्रक्रिया की विफलता के बारे में स्पष्टतः इजराईल-विरोधी अमेरिका- विरोधी अवस्थिति ली** । अमेरिका के चेहरे पर इस से भी बड़ा तमाचा यह था कि वे, जिन्होंने उस माह के शुरू में दोहा में आयोजित अमेरिका समर्थित मध्य-पूर्व व उत्तरी अफ्रीका सम्मेलन का बहिष्कार किया था, वे इस्लामिक शिखर सम्मेलन में हिस्सेदारी करने गये। **जून 98 में सम्पन्न 'ऑर्गनाइजेशन ऑफ अफ्रीकन यूनिटी' (OAU) ने लीबिया संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के प्रतिबंधों की अवहेलना करने का निर्णय लिया** ।" ('Political Resolution', वही, Section-28, अनुवाद व जोर हमारा)

यह तो आज की बात है। इसके पहले (80 के दशक के मध्य तक) तीसरी दुनिया के शासकों ने वास्तव में साम्राज्यवाद का प्रतिरोध किया और उससे मोलभाव किये। लेकिन वह इसी कारण कि वे दलाल नहीं बल्कि स्वतंत्र पूंजीपति थे – हालांकि बेहद कमजोर। वे कमजोर किन्तु स्वतंत्र पूंजीपति नहीं होते तो न तो साम्राज्यवादियों से उनका अंतर्विरोध पैदा होता और न ही वे संघर्ष करते ।पीपुल्स वार द्वारा स्वीकारे गये उपरोक्त तथ्य उस अन्तविरोध और उस स्वतंत्रता की ठोस अभिव्यक्तियां हैं जो आज भी बची हुई है, हालांकि आज तीसरी दुनिया के शासक वर्ग साम्राज्यवादी व्यवस्था में एकाकार हो रहे हैं। दलाल अपने ही मालिक की ऐसी खिलाफत नही कर सकते। वे अपने मालिक के प्रति वफादार होते हैं।

हम यहां कह दें कि पीपुल्स वार ने उपरोक्त सच्चाइयां स्वीकार कर अपने लिए असंगतियां ही पैदा की हैं क्योंकि इन सच्चाइयों की स्वीकारोक्तियां उसकी दलाल की थीसिस से मेल नही खाती। उसके मुकाबले वे संगठन ज्यादा सुसंगत और इसी कारण आलोचना से ज्यादा सुरक्षित हैं जो इन सच्चाइयों को नहीं स्वीकार करते और गुटनिरपेक्ष आंदोलन, G-77, G-15, OIC, OAU इत्यादि को सीधे साम्राज्यवादियों की साजिश घोषित कर देते हैं। पर ऐसा करने वाले उसी तरह ज्यादा सुसंगत और सुरक्षित हैं जिस तरह धर्मग्रन्थों को शब्दशः मानने वाले लोग सुसंगत व सुरक्षित होते हैं। ये लोग जितने सुसंगत होते हैं, जिन्दगी से उतने ही असंगत।

पीपुल्स वार इस तरह की जो अंतर्विरोधी बातें तीसरी दुनिया के शासकों के लिए आम तौर पर करता है, वही वह भारतीय शासक वर्ग के लिए भी करता है। यहां भी उतनी ही असंगतियां उभर कर आती हैं ।

"दूसरे विश्व युद्ध के दौरान व उसके बाद भारतीय उपमहाद्वीप में एक अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिस्थिति पैदा हुयी। ... इस परिस्थिति में भारतीय बड़े दुर्जुआ व जमींदार वर्ग, जो अंग्रेजी साम्राज्यवाद के साथ सांठ-गांठ करके भारतीय जनता की आजादी की सच्ची आकांक्षाओं का गला घोट रहे थे, राजसत्ता पर काबिज हो गये। **ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अपना प्रत्यक्ष शासन छोड़ना पड़ा।** साजिशों व षड्यंत्रों के बीच, जिसके चलते साम्प्रदायिक जनसंहार व धर्म के आधार पर देश का बंटवारा हुआ, सत्ता कांग्रेस व मुस्लिम लीग को हस्तांतरित कर दी गयी थी। भारत एक अर्ध-औपनिवेशिक अर्ध-सामंती देश में तब्दील हो गया। औपचारिक आजादी जिसकी 1947 में घोषणा हुई थी, असल में झूठी है।" ('Party Programme', Section-7, वही, अनुवाद व जोर हमारा)

यहां थीसिस बिलकुल साफ है। क्रांतिकारी परिस्थिति के कारण और युद्ध में कमजोर हो जाने के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद को प्रत्यक्ष शासन छोड़ना पड़ा और उसने सत्ता अपने दलालों – कांग्रेस व मुस्लिम लीग को सौंप दी। असल में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और 1947 की औपचारिक आजादी झूठी थी।

इस थीसिस के बाद आप आशा करेंगे कि यह दलाल शासक वर्ग मालिक की सेवा करता रहेगा और उसकी सेवा करके अपनी सेवा करेगा। परन्तु तीसरी दुनिया के बाकी दलाल शासकों की तरह भारतीय दलाल पूंजीपति वर्ग भी बड़ा अजीबो गरीब है। बल्कि यह बहुत दुष्ट है। यह ऐसा दलाल है जो अपने मालिक बदलता रहता है। यदि कोई मालिक इस दलाल के हितों के अनुरूप काम नहीं करता तो, यह दलाल फट अपना मालिक बदल देता है। यह आश्चर्यजनक है। परन्तु पीपुल्स वार की यही राय है। जरा देखिए :

"1947 से भारतीय शासक वर्ग **साम्राज्यवादियों के निर्देशन में (पहले अंग्रेज, फिर सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद और अब अमरीकी साम्राज्यवाद)** दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप के अपने पड़ोसी देशों के खिलाफ आक्रमण, धौसपट्टी बांहे मरोड़ने तथा उनके आंतरिक मामलों में दखल देने की नीति अपनाता रहा है।"... ('Resolutions', page-25, अनुवाद व जोर हमारा)

"औपचारिक आजादी के बाद बड़े दलाल नौकरशाह बुर्जुआ और सामंती शासक वर्गों ने **अपने साम्राज्यवादी मालिकों की वफादारी से सेवा की है। पुराने ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण को सुरक्षित रखते हुए** नेहरू के शासन काल में भारतीय प्रतिक्रियावादी शासक वर्ग पहले **अमेरिकी साम्राज्यवादी प्रभुत्व के अधीन आया और** बाद में 1960 के दशक के अंत में **जब सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद ने भारतीय शासक वर्ग की विस्तारवादी नीतियों का और महत्वाकांक्षाओं का समर्थन किया, यह सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद की ओर झुक गया** । 1971 के भारत - सोवियत समझौते के बाद सोवियत संघ की ओर भारत का झुकाव सुदृढ़ हो गया। इसी प्रकार फ्रांस, जर्मनी, जापान तथा दूसरे साम्राज्यवादी देशों से पूंजी व तकनीक अर्ध-औपनिवेशिक भारत में आ रहे हैं तथा भारत के **बाजारों पर उनकी पकड़ बढ़ती जा रही है।** भारतीय शासक वर्ग अपने दलाल चरित्र के कारण हमेशा ही साम्राज्यवादी देशों पर निर्भर रहे है, और कभी एक, तथा कभी दूसरे ताकतवर, साम्राज्यवादी देश की तरफ झुक रहे हैं। इसी प्रकार साम्राज्यवादियों के बीच तीखे अंतर्विरोधों ने, भारतीय शासक वर्ग को **विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के साथ समझौते के द्वारा अपने मोल भाव की ताकत को बढ़ाने का अवसर दिया है** ।" ('Party Programme', वही, Section-11 अनुवाद व जोर हमारा)

"...**अर्थव्यवस्था के सरकारी क्षेत्र में प्रवेश करने की अमरीकी साम्राज्यवादियों की अरूचि और भारतीय शासकों के विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहित करने में उनकी अनिच्छा ने भारत को सोवियत संघ के चंगुल में धकेल दिया, जिसने दोनों कार्यभार स्वीकारें।...**" ('Political Resolution', section-32 अनुवाद व जोर हमारा)

"...(1980 के दशक में) **भारतीय शासकों ने तकनीक, पूंजीगत वस्तुओं, ऋणों और अन्य पूंजी के प्रवाहों के लिए दूसरे साम्राज्यवादी स्रोतों को ढूंढना शुरू कर**

दिया क्योंकि सोवियत पूंजी काफी कम थी, उसकी माल और मशीनरी काफी मंहगी थी और उनकी तकनीक पिछड़ी हुयी थी। **हालांकि 1947 से ही पश्चिम पर आर्थिक निर्भरता लगातार बढ़ रही थी, लेकिन 1980 के दशक में यह दिन दुना रात चौगुना बढ़ी है** । (वही, Section-33, अनुवाद व जोर हमारा)

"...लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था में पश्चिमी पूंजी की इस बढ़ रही घुसपैठ और 1980 के दशक से सोवियत संघ के घट रहे पूंजी प्रवाह के बावजूद भारतीय शासक वर्ग सोवियत संघ की तरफ झुका रहा, मुख्यतः इसलिए कि **वे अपनी आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सोवियत संघ के संरक्षण, सुरक्षा, अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव और सैन्य शक्ति का इस्तेमाल कर सकते थे ।"** (वही, Section-33, अनुवाद व जोर हमारा)

"लेकिन इसी समय भारतीय शासक वर्ग यह समझकर कि सोवियत संघ कमजोर हो गया है, अमेरिका और अन्य साम्राज्यवादी **शक्तियों के करीब आना शुरू हो गया** । यह बिलकुल स्वाभाविक है क्योंकि अंतिम आंकलन में कोई भी दलाल शासक वर्ग अपने वर्ग चरित्र के कारण ही साम्राज्यवाद के पिट्ठू बने रहते हैं और उनमें भी अधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी को ताकतों या ताकत के पिट्ठू।..." (वही, Section-34, अनुवाद व जोर हमारा)

" यद्यपि भारतीय शासक वर्ग सोवियत महाशक्ति के पतन के बाद **अमरीकी साम्राज्यवाद की तरफ झुका, लेकिन उसी समय उन्होंने अन्य अग्रणी साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ, जो उनकी आर्थिक और राजनीतिक जरूरतों को पूरा कर सके, संबंधों को सुधारना भी जारी रखा** ।" (वही , Section - 35, अनुवाद व जोर हमारा)

"जैसे-जैसे साम्राज्यवादी अंतर्विरोध तीखे हो रहे हैं, भारतीय शासक वर्ग विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के बीच दांव खेलने की कोशिश कर रहे हैं ।... नाभिकीय अप्रसार संधि और नाभिकीय हथियार मुक्त क्षेत्र पर भारत के हस्ताक्षर लेने पर अड़े रहकर; रूस से राकेट तकनीक के आयात के लिए इसरो (ISRO) पर प्रतिबंध लगाकर और पी.एस.एल.वी.तथा जी.एस.एल.वी. के अंतरिक्ष कार्यक्रम रोकने के लिए दबाव डालकर; मई 1998 में पोखरन परमाणु परीक्षण के पश्चात् भारत के निर्यात पर प्रतिबंध लगाकर व अन्य अनेक मुद्दों द्वारा **अमरीकी साम्राज्यवादी भारत को ब्लैकमेल करने तथा उस पर जबरदस्ती करने का प्रयास कर रहा है । यद्यपि भारतीय शासक वर्ग अमरीकी साम्राज्यवादियों के सामने जितना सम्भव है उतना झुक रहे हैं, लेकिन साथ ही ये अंतर्साम्राज्यवादी अंतर्विरोधों का इस्तेमाल करके दूसरी साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ सांठगांठ करने की कोशिश भी कर रहे हैं** ।" (वही, Section-36, अनुवाद व जोर हमारा)

और अंत में;

"साम्राज्यवाद के छोटे साझीदार (Junior Partner) की भूमिका अदा कर दक्षिण एशिया के अपने पड़ोसी देशों में बढ़ने, उनके बाजार में से एक हिस्से को हथियाने और उनकी अर्थव्यवस्था व राजकीय ढांचे पर नियंत्रण बढ़ाने की विस्तारवादी महत्वाकांक्षा का पोषण दलाल नौकरशाह बुर्जुआ ने हमेशा किया है । दलाल नौकरशाह बुर्जुआ की इन विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं, दखलंदाजीवाली और विध्वंसक गतिविधियों के कारण भारतीय विस्तारवाद, अपनी विशाल उत्तम सेना व मजबूत केन्द्रीकृत राज्य सत्ता के चलते दक्षिण एशिया के सभी देशों की सुरक्षा व

अखंडता के लिए भीषण खतरे के रूप में उभर गया है । **दलाल नौकरशाह बुर्जुआ दक्षिण एशियाई देशों में साम्राज्यवादी शोषण का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है** ।.." ('Party Programme', वही, Section-17, अनुवाद व जोर हमारा)

उपरोक्त सारा कुछ इस कदर अंतरविरोधों से भरा है कि पीपुल्स वार को इन्हें सुलझाने में और भी ज्यादा अंतर्विरोधों मे फंस जाना पड़ेगा । अंतर्विरोध इतने ज्यादा है कि दो जगहों पर एक दूसरे से विरोधी बातें कही गयी हैं । इन सबसे उबरने का एक ही रास्ता है, वह यह कि आजादी के बाद भारतीय पूंजीपति वर्ग के चरित्र को दलाल बुर्जुआ का चरित्र न माना जाए । उसे ऐसा कमजोर पूंजीपति वर्ग माना जाए जो साम्राज्यवादियों के अधीन दुनिया में अपने वर्गीय हितों के लिए हाथ-पांव मार रहा है। यह मानते ही उपरोक्त सभी अंतरविरोध समाप्त हो जाते हैं तथा सभी तथ्य और घटनाएं थीसिस के अनुरूप सुसंगत रूप ग्रहण कर लेती है ।

हम एक बार फिर दुहरा दें कि इतनी असंगतियां व अंतरविरोध इसलिए हैं कि पीपुल्स वार भारतीय पूंजीपति वर्ग को दलाल पूंजीपति वर्ग मानता है । माओ के अनुसार दलाल पूंजीपति अंतर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के दुमछल्ले होते हैं। अब दुमछल्ले की कोई स्वतंत्र हैसियत नहीं हो सकती। ऐसे में वह वैसा व्यवहार कैसे कर सकता है जैसा कि पीपुल्स वार भारतीय पूंजीपति वर्ग के बारे में बताता है ! आइये, इसे और ज्यादा नजदीक से देखें ।

पहली बात तो यह कि पीपुल्स वार के अनुसार भारतीय दलाल बुर्जुआ ने तीन बार अपने मालिक बदले हैं । पहले वह ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का दलाल था, फिर सोवियत और अब अमरीकी । जब भी किसी साम्राज्यवादी ताकत ने भारतीय दलाल बुर्जुआ के आर्थिक व राजनीतिक हित साधने से इंकार किया, इसने अपना मालिक बदल लिया । यह बात सबसे स्पष्ट रूप में सोवियत संघ के मामले में कही गयी है कि जब अमरीकी साम्राज्यवादियों ने भारतीय शासकों की विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं और सरकारी क्षेत्र में पूंजी निवेश के प्रति अरूचि दिखाई तो भारतीय शासक वर्ग ने उन्हें छोड़कर सोवियत संघ को पकड़ लिया । यह कथन बहुत ही स्पष्ट रूप में भारतीय "दलाल" बुर्जुआ के स्वतंत्र चरित्र को दिखाता है । भारतीय शासक वर्ग अमरीकी साम्राज्यवादियों की अनिच्छा के बावजूद अपने वर्गीय हितों के लिए सरकारी क्षेत्र खड़ा करता है । यहां तक कि उनकी इसमें पूंजी निवेश की अरूचि के बावजूद वह उन्हें खड़ा करता है और पूंजी के लिए सोवियत संघ के साथ चला जाता है । इससे साफ उभरता है कि भारतीय पूंजीपति वर्ग काफी स्वतंत्र है । वह अपने वर्गीय हितों के अनुरूप नीतियां बनाता है और फिर उसके लिए एक साम्राज्यवादी को छोड़कर दूसरे का दामन पकड़ लेता है ।

हम एक बार फिर कहेंगे कि यह साम्राज्यवाद के दुमछल्ले का चरित्र नहीं है । यदि तब भी इस पूंजीपति वर्ग को दलाल कहा जाता है तो माना जाना चाहिए कि यह प्रचलित शब्द के विपरीत है । प्रचलित दलाल बुर्जुआ शब्द का यह कतई अर्थ नहीं है कि वह स्वतंत्र व्यवहार करे । और यदि वह कोई विशेष किस्म का दलाल बुर्जुआ है जो स्वतंत्र व्यवहार करता है तथा अपनी आर्थिक व राजनीतिक जरूरतों के अनुरूप मालिक बदल लेता है तो फिर यह भी स्पष्ट है कि यह दलाल बुर्जुआ अपने यहां पूंजीवाद का विकास कर सकता है और पूंजीवादी अधिनायकत्व कायम कर सकता है। तब हम 'दलाल' शब्द को लेकर कोई झगड़ा नहीं करेंगे क्योंकि तब हम कहेंगे कि 'दलाल' शब्द का चाहे जो मतलब हो, हमारी आपकी सहमति बनती है कि इस 'दलाल' बुर्जुआ ने पिछले 54 सालों में देश में पूंजीवाद का विकास किया है और पूंजीवादी अधिनायकत्व कायम किया है तथा इसीलिए आज क्रांति की मंजिल समाजवादी बनती है, नव जनवादी नहीं ।

लेकिन आप इस निष्कर्ष पर पहुंचने को तैयार नहीं है । परन्तु आपके तथ्य आपकी चुगली करते हैं और आपको अंतर्विरोधी बातें कहने के लिए मजबूर कर देते हैं। इसी उद्धरण में आप कहते हैं कि अमरीकी साम्राज्यवाद की भारतीय विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहित करने में अनिच्छा थी । लेकिन हमारे द्वारा उपरोक्त उद्धृत पहले और अंतिम उद्धरण में तो आप उल्टी बात कहते हैं। पहले में आप कहते हैं कि भारतीय विस्तारवादी पहले ब्रिटिश, फिर सोवियत और अब अमरीकी निर्देशन में पड़ोसी देशों में हस्तक्षेप कर रहे है । अंतिम में आप कहते हैं कि आज भारत दक्षिण एशिया में साम्राज्यवादी लूट का **छोटा साझीदार** और **माध्यम** बना हुआ है। तब फिर 1960 के दशक के अंत में अमरीकी साम्राज्यवादियों को क्या हो गया था ? वे क्यों तब भारत को दक्षिण एशिया में अपनी लूट का माध्यम व छोटा साझीदार बनाने का तैयार नहीं थे ? आपके पास इसका कोई जवाब नहीं है । आपके पास जवाब इसलिए नहीं है क्योंकि आप भारतीय शासक वर्ग को दक्षिण एशिया में लूट का छोटा साझीदार व माध्यम मानते हैं। बात यह नहीं है। भारतीय शासक खुद अपने तयीं दक्षिण एशिया में विस्तारवादी नीतियां अपना रहे हैं, अपने वर्गीय हितों के अनुरूप । इसी तरह साम्राज्यवादी सीधे इस क्षेत्र में अपनी लूट जारी रखने का प्रयास करते हैं । ऐसे में कभी इनके हित आपस में टकराते हैं तो कभी मेल खाते हैं । हां, भारतीय शासक वर्ग अत्यंत कमजोर है तो वह उसी के अनुरूप व्यवहार करता है । परन्तु वह किसी तरह माध्यम नहीं है ।

इसी तरह आप बार-बार कहते हैं कि भारतीय शासक वर्ग ने अपनी आर्थिक व राजनीतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सोवियत संघ की सहायता का इस्तेमाल किया, इसके लिए वे आज अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों से संबंध सुधार रहे हैं तथा विभिन्न साम्राज्यवादी देशों के बीच दांव खेलने की कोशिश कर रहे हैं । मानना पड़ेगा कि साम्राज्यवाद का यह दुमछल्ला दलाल बुर्जुआ समझ से परे हैं । वह अपने दलाल चरित्र के अनुरूप कोई काम नहीं करता और सारे काम उल्टे करता है। वह साम्राज्यवादियों का इस्तेमाल करता है, उनसे दांव खेलता है ।

यही नहीं, इस दलाल बुर्जुआ ने जिसे आजकल अपना मालिक चुना हुआ है, यानि अमरीकी साम्राज्यवाद, आज उसे भी अपने नौकर (दलाल) को ब्लैकमेल करना पड़ा रहा है। यही नहीं कि दलाल अपने मालिक के खिलाफ कोई काम ही न करे या यदि कभी गुस्ताखी कर दे तो मालिक की एक घुड़की से ठीक हो जाए । नहीं । यह दलाल बुर्जुआ अपने मन की करता है और बेचारे मालिक को उसे ब्लैकमेल करना पड़ता है । धन्य है इस दलाल और उसके मालिक के सम्बन्ध ।

सच्चाई तो यह है कि ये तथ्य यह दिखाते हैं कि भारतीय पूंजीवाद वर्ग व साम्राज्यवाद के संबंध दलाल बुर्जुआ और साम्राज्यवाद के संबंध नहीं है। ये संबंध अपेक्षाकृत स्वतंत्रता के संबन्ध है, उतने ही स्वतंत्र जितना साम्राज्यवाद के युग में एक साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग और एक कमजोर पूंजीपति वर्ग के बीच हो सकता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि पीपुल्स वार को चाहे-अनचाहे इसी नतीजे पर पहुंचना पड़ा है । हालांकि वह आज भी इसे खुलेआम घोषित करने को तैयार नहीं है परन्तु उसे मजबूरन इस नतीजे को स्वीकार करना पड़ा है । यह हुआ है भारतीय दलाल नौकरशाह बुर्जुआ और भारतीय जनता के बीच एक स्वतंत्र और बुनियादी अंतर्विरोध को स्वीकार करके।

अभी हाल तक (मई 1999 तक) पीपुल्स वार नयी जनवादी क्रांति की बात करने वाले अन्य क्रांतिकारी ग्रुपों की तरह भारत में चार प्रमुख अंतर्विरोधों की बात करता रहा है – सामन्तवाद व व्यापक जनता के बीच का अंतर्विरोध; साम्राज्यवाद व भारत की जनता

के बीच का अंतर्विरोध; पूंजी व श्रम के बीच का अंतर्विरोध तथा शासक वर्गों के बीच का अंतर्विरोध । कुछ संगठन इनमें से पहले को प्रधान मानते रहे हैं तो कुछ दूसरे को। खुद पीपुल्स वार इनमें से पहले को प्रधान मानता रहा है और उसे ही अब भी प्रधान मानता है ।

परन्तु पीपुल्स वार की इस कांग्रेस ने अंतर्विरोधों की इस सूची को बदल दिया। इसने तीन बुनियादी (basic) अंतर्विरोध गिनाए तथा दो प्रमुख (major) अंतर्विरोध । पहले गिनाए गए दो अंतर्विरोध बुनियादी बने रहे तथा उनमें एक बुनियादी अंतविरोध और जुड़ गया यानि दलाल नौकरशाह बुर्जुआ व व्यापक जनता के बीच का अंतर्विरोध । इसके साथ ही, बाद वाले दोनों अंतर्विरोध प्रमुख (major) अंतर्विरोधों की श्रेणी में बने रहे ।

भारत की नवजनवादी क्रांति के खेमे में यह एकदम नयी प्रस्थापना है। यह प्रस्थापना ऐसी है जिसके निहितार्थ बहुत बड़े हैं, उतना, शायद, जितना पीपुल्स वार सोचता भी नहीं। इस प्रस्थापना को तार्किक तौर पर आगे बढ़ाने पर पीपुल्स वार को अपनी नवजनवादी क्रांति की समूची लाइन छोड़नी पड़ेगी।

पीपुल्स वार के अनुसार वह आज तक भारतीय दलाल बुर्जुआ और भारतीय जनता के बीच के अंतविरोध को साम्राज्यवाद व भारतीय जनता के बीच के अंतर्विरोध से एक रूप समझता रहा है। यानि आज तक वह इसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानता रहा है। अब उसकी नजर में इसका स्वतंत्र अस्तित्व है। भारतीय राज्य भारतीय जनता का जो दमन करता है, वह इसके स्वतंत्र अस्तित्व की अभिव्यक्ति है ।

लेकिन सबसे बड़ा सवाल तो यह है कि यदि भारतीय पूंजीपति वर्ग का साम्राज्यवाद से स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है तो फिर इसके भारतीय जनता से अंतर्विरोध का स्वतंत्र अस्तित्व कहां से हो सकता है । दोनों ही अंतर्विरोधों के एक ध्रुव पर है भारतीय जनता । अब यदि दूसरे ध्रुव पर साम्राज्यवाद है और उसी के साथ और उसी के अधीन दलाल बुर्जुआ भी वहीं है, तब केवल एक ही अंतर्विरोध बनता है। और अभी तक नव जनवादी क्रांति के खेमें की मान्यता भी यही रही है । ये दोनों दो अंतर्विरोध हो ही तब सकते हैं जब भारतीय पूंजीपति वर्ग का साम्राज्यवाद से स्वतंत्र अस्तित्व हो । यानि भारतीय पूंजीपति वर्ग के साम्राज्यवाद से स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारें बिना भारतीय पूंजीपति वर्ग और भारतीय जनता के बीच के स्वतंत्र **बुनियादी** अंतर्विरोध का अस्तित्व तार्किक तौर पर असंभव है । अतः या तो पीपुल्स वार को भारतीय पूंजीपति वर्ग के स्वतंत्र अस्तित्व को (और वह भी काफी ज्यादा स्वतंत्र अस्तित्व को, क्योंकि उसके अनुसार यह अंतर्विरोध बुनियादी है) स्वीकार करना पड़ेगा अन्यथा अपने इस नये बुनियादी अंतर्विरोध के अस्तित्व को नकारना पड़ेगा । हमारा मानना है कि पीपुल्स वार को पहले वाली चीज करनी चाहिए और अपनी नयी सोच को उसकी तार्किक परिणति तक पहुंचाना चाहिए ।

इस तरह इस नये बुनियादी अंतर्विरोध की स्वीकृति के साथ पीपुल्स वार ने प्रकारान्तर से भारतीय पूंजीपति वर्ग के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार कर लिया है । यदि अब भी वह इसके लिए दलाल शब्द का इस्तेमाल करता है तो उसका कोई मतलब नहीं रह जाता क्योंकि प्रचलित अर्थों में दलाल पूंजीपति वर्ग कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। यदि वह स्वतंत्र है तो दलाल शब्द का कोई मतलब नहीं है और उसे केवल पूंजीपति वर्ग कहा जाना चाहिए। और इसके साथ ही दलाल और राष्ट्रीय पूंजीपति का तमाम भेद मिट जाता है । भारतीय पूंजीपति वर्ग एक है और भारतीय जनता का दुश्मन है ।

यहां हम यह भी उल्लेख कर दें कि इस बुनियादी अंतर्विरोध को स्वीकार करके पीपुल्स वार ने अभी तक नव जनवादी क्रांति के खेमें में प्रचलित इस तथाकथित माओवादी अवधारणा को अस्वीकार कर दिया है कि जब तक साम्राज्यवाद है तब तक पहले के

उपनिवेशों-अर्ध उपनिवेशों में (तीसरी दुनिया के देशों में) न तो पूंजीवादी विकास हो सकता है और न पूंजीवादी अधिनायकत्व कायम हो सकता है। भारतीय पूंजीपति के स्वतंत्र अस्तित्व को प्रकारांतर से स्वीकार कर पीपुल्स वार ने भारत में पूंजीवादी अधिनायकत्व को प्रकारान्तर से स्वीकार कर लिया है ! इसी तरह वह देश के कुछ देहाती हिस्सों में पूंजीवादी विकास को भी स्वीकार करता है। इस तरह वह तथा कथित माओवादी अवधारणा को पहले ही छोड़ चुका है। अब बात केवल इतनी है कि वह देश के बाकी देहाती हिस्सों में भी पूंजीवाद की मौजूदगी को स्वीकारें (जो कि आज का यथार्थ है) तथा इस तरह अपने अर्ध सामंती - अर्ध औपनिवेशिक फ्रेमवर्क को त्याग दे। केवल यही उसे उन तमाम अंतर्विरोधों से उसे उबार सकता है जिसमें उसने खुद को फंसा लिया है।

हमने कहा कि पीपुल्स वार देश के कुछ देहाती हिस्सों में पूंजीवाद की मौजूदगी को स्वीकार करता है। साथ ही हमने यह भी कहा कि देश के बाकी हिस्सों में भी यही यथार्थ है (हालांकि वह कम स्पष्ट और कम मुखर है)। आइये देखें कि पीपुल्स वार खुद ऐसे तथ्य प्रस्तुत करता है जिसका कोई और अर्थ नहीं निकाला जा सकता।

"किसान विद्रोहों द्वारा बार - बार प्रदर्शित जनता के गुस्से से घबराकर दलाल नौकरशाह बुर्जुआ के नेतृत्व में शासक वर्ग ने 1947 के बाद भूमि संबन्धों में कुछ बदलाव किया। लेकिन किसानों की विशाल बहु संख्या की युगों पुरानी अपनी जमीन की आकांक्षा अपूर्ण ही रही।..." ('Party Programe', वही, Section-13)

"...अंत में, 1960 के दशक के अंत में 'हरित क्रांति' को प्रस्तुत किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य था - '60 के दशक के उत्तरार्द्ध में भारत के विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र में उदित हो रही लाल क्रांति का विकल्प प्रस्तुत करना, साम्राज्यवादी वस्तुओं जैसे फार्म मशीनरी, रासायनिक खाद, उच्च उत्पादकता किस्म बीज (HYV), कीटनाशक आदि, जिनसे साम्राज्यवादी बाजार भरे हुए थे, उनके लिए भारत में सुरक्षित बाजार उपलब्ध कराना, नासूर बन चुके तीव्र खाद्यान्न संकट को हल करना, और **कृषि क्षेत्र में अधिक निवेश और सिंचाई के लिए ग्रामीण संभ्रान्तों व जमीदारों द्वारा संस्थागत ऋण की मांग पूरा करना।**

"हरित क्रांति ने एच.वाई.वी. बीज और अन्य आगतों की खपत को भारी मात्रा में बढ़ा दिया जिसके फलस्वरूप उत्पादन की लागत बढ़ गयी। अतः उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि के बावजूद, कृषि बचत में गिरावट के कारण किसानों की हालत अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं सुधरी। इसने किसान समुदाय की बहुसंख्या को व्यापारियों, सूदखोरों, जमींदारों बैंको और वित्तीय संस्थाओं के चंगुल में और ज्यादा फंसा दिया। यद्यपि कई इलाकों में पूंजीवादी खेती में बढ़ोत्तरी हो रही है पर कई इलाकों में शोषण के खुलेआम, अर्ध सामंती तरीके जैसे कि महाजनी सूदखोरी द्वारा शोषण, बटाइदारी प्रथा, बंधुआ मजदूरी, गैर आर्थिक शोषण के अन्य रूप भी प्रचलित हैं।

"भारत के विभिन्न नकदी फसलों के इलाकों में या यत्र-तत्र बिखरे विभिन्न विकसित टुकड़ों (पाकेटों) में एक बहुत ही छोटा तबका पूंजीवादी जमींदारों के रूप में उभरा है। इसी प्रक्रिया में, तुलनात्मक रूप से खेतिहर मजदूर का स्वतंत्र तबका भी विकसित हुआ है। यह पूंजीवादी विकास पंजाब, हरियाणा के ज्यादातर हिस्सों, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और देश के अन्य भागों (Pockets) में नजर आता है, जहां कृषि में पूंजीवाद - विकृत, गतिरुद्ध और अर्ध सामंती अवशेषों के साथ - मुख्य रूप में

विकसित हुआ है।..." (वही, Section-14)

"...एक तरफ पानी, बिजली, डीजल, खाद और सभी खेती के काम आने वाली चीजों के दामों में बढ़ोत्तरी और दूसरी तरफ उनके उत्पाद के लाभकारी दाम कम होने से सच कहें तो **छोटे व मध्यम किसानों की जमीनें बड़े जमींदारों के हाथों में चली गयी हैं। गंभीर कृषि संकट के कारण** देश भर में कई गरीब व यहां तक कि मध्यम किसान आत्महत्या कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त छोटे किसानों के लिए तथा कथित कृषि व्यापार संघ, जिसको बहुत धूम - धाम से स्थापित किया जा रहा है, **गरीब और मध्यम किसान को भूमिहीन के स्तर पर ठेल रहे हैं और भारतीय कृषि पर बड़े जमींदारों व पेप्सी जैसे कृषि व्यापार निगमों की पकड़ को मजबूत कर रहे हैं।**

"राज्य पहले ही बागानों पर ऊपरी सीमा को हटाकर, भूमि हदबन्दी एक्ट को हल्का करके व उसे तोड़-मरोड़कर **जमीन के और अधिक केन्द्रीकरण** को प्रोत्साहित कर रहे हैं। तथा कथित कृषि व्यापार संघ गरीब और मध्यम किसानों को सहायता के नाम पर वास्तव में **जमीन के अधिक केन्द्रीकरण** पर निशाना लगाए हुए हैं....

"कृषि की उपेक्षा के कारण इसका सकल घरेलू उत्पाद में योगदान बहुत कम हो गया है। 1991-92 में यह 30% था जो 1997-98 में घटकर 24.4% तक हो गया..." ('Political Resolution', Section-39)

"खेती के लिए आगतों की खरीदारी से लेकर खेती उत्पाद की बिक्री तक कृषि क्षेत्र की विश्व पूंजीवादी बाजार पर निर्भरता में वृद्धि के कारण कृषि संकट अधिकाधिक बढ़ रहा है।..." (वही, Section-40)

"जमींदारों के एक हिस्से के पास उत्पादन के आधुनिक साधन हैं, वे खेत मजदूर लगाते हैं, बाजार उत्पादन के लिए खेती बाड़ी की देख रेख करते हैं **तथा अपनी बचत का एक बड़ा हिस्सा खेती में पुनः निवेश करते हैं। जमींदारों का यह हिस्सा खेती में पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व करता है।** परन्तु यह पूंजीवाद, अपने ढेर सारे सामंती विशेषाधिकारों के कारण, विकृत पूंजीवाद है।...

"जमींदारों को ग्रामीण क्षेत्रों में अथाह सामाजिक और राजनीतिक सत्ता प्राप्त है। वे संस्थागत कर्जों, आधुनिक लागत सामग्रियों एवं सरकार द्वारा प्रदान की गयी अन्य अधिसंरचनात्मक सुविधाओं का बड़ा हिस्सा हड़प लेते हैं।...

"जमींदारों का एक हिस्सा पिछड़ी जातियों की ऊपरी तहों से आता है और वे कुछ समय पहले ही अस्तित्व में आये हैं। वे विभिन्न जाति आधारित राजनीतिक पार्टियों के सामाजिक आधार का काम करते हैं।" ('Strategy and Tactics', पृष्ठ 9-10)

"...पूंजीवादी धनी किसान आधुनिक तकनीक इस्तेमाल करते हैं, सघन खेती करते हैं, उत्पादन की मात्रा बढ़ाने के लिए जमीन पट्टा पर लेते हैं और बाजार के लिए उत्पादन करते हैं। कुछ पाकेट में कृषि में पूंजीवादी संबंधों की उन्नति, कृषि लागत सामग्रियों को खरीदने और उत्पादन को बेचने के लिए धनी किसानों की बाजार पर बढ़ती निर्भरता उन्हें साम्राज्यवाद और दलाल बड़े पूंजीपति वर्ग के साथ, जो बाजार को

नियंत्रित करते हैं, बढ़ते विरोध में खा रही हैं।..." (वही, पृष्ठ -15)

"... हालांकि हमारे देश की कृषि के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है, पर हमारे देश में शहरी क्षेत्रों का अच्छी-खासी मात्रा में फैलाव हो रहा है।

"देहात की मेहनतकश जनता का शहर की ओर पलायन जारी है क्योंकि कृषि में लगातार बढ़ते जाते संकट के चलते वे देहाती क्षेत्र में जीविका के कोई साधन नहीं पाते। इसके परिणामस्वरूप एक प्रमुख सच्चाई के बतौर हम देखते हैं कि लगातार फैलते शहरों और कस्बों में, जो कि पहले ही ठंसे पड़े हैं, मेहनतकश जनता की संख्या जरूरत से ज्यादा बढ़ रही है, खासकर बिना किसी ठीक ठाक रोजगार के अवसर वालों की।..." (वही, पृष्ठ-70-71, उपरोक्त सभी उद्धरणों में अनुवाद व जोर हमारा)

यहां हम देखते हैं कि पीपुल्स वार ने देश के कुछ देहाती हिस्सों में पूंजीवाद के विकास को खुलेआम स्वीकार कर लिया है-पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश इत्यादि में। परन्तु इनके अलावा भी वह आम तौर पर कृषि के बारे में जो बात कहता है वह सारा कुछ कृषि में पूंजीवाद का द्योतक है।

वह कहता है कि कृषि में आगतों के दामों में वृद्धि और उत्पादन के कम दाम होने से किसानों की कंगाली बढ़ रही है तथा छोटे व मध्यम किसानों की जमीनें जमींदारों के हाथों में जा रही हैं। इसी तरह कृषि व्यापार संघ भी छोटे – मध्यम किसानों की जमीन जमींदारों के हाथ में पहुंचा रहे हैं। यह प्रक्रिया कृषि में अर्ध सामंतवाद की द्योतक नहीं, सीधे पूंजीवादी विकास की द्योतक है। जैसे-जैसे कृषि में पूंजीवाद का विकास होता जाता है, छोटे-मध्यम किसान तबाह होते जाते हैं और उनकी जमीन बड़े भूस्वामियों के हाथों में केन्द्रित होती जाती है। यह प्रक्रिया किस रूप में चलती है तथा उसमें माध्यम कृषि व्यापार संघ बनता है या कुछ और, यह महत्वपूर्ण नहीं है।

यहां जिन जमींदारों के हाथों में जमीन के संकेन्द्रण की बात हो रही है, वे सामंती जमींदार कतई नहीं हैं। बल्कि ये वे हैं जिनके बारे में खुद पीपुल्स वार कहता है कि वे 'खेती में पूंजीवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं; कि वे 'पूंजीवादी-जमींदार के रूप में उभरे है।' इसी तरह जिन छोटे-मध्यम किसानों की जमीन छिन रही है, वे आसामी किसान नहीं है। यदि वे आसामी किसान होते, तो जमीन छिनने की बात हो नहीं होती वह जमीन तो होती ही जमींदार की। तब उसके केन्द्रीकरण की बात कहां से उठती ?

हमारा कहना है कि देश के ज्यादातर तथाकथित जमींदार ऐसे ही हैं यानि बड़े भूस्वामी जो पूंजीवादी खेती करते हैं। उसी तरह ज्यादातर छोटे व मध्यम किसान खुद अपनी जमीनों के मालिक हैं। वे लगान या बंटाई पर जमीन नहीं जोतते। ऐसे छोटे व मध्यम किसानों की संख्या बहुत थोड़ी है जो जमीन किराये पर लेते हैं और ऐसी जमीन भी समूची खेती वाली जमीन का बहुत थोड़ा हिस्सा है। (देखें, लाल सलाम-3)

अतः पीपुल्स वार द्वारा वर्णित यह प्रक्रिया शुद्ध पूंजीवादी प्रक्रिया है और वह देश के ज्यादातर हिस्सों में चल रही है। आज वही देश में प्रधान है।

इसी तरह कृषि व्यापार निगमों की कृषि पर पकड़ तथा जमीन के केन्द्रीकरण के लिए भूमि कानूनों में परिवर्तन भी इसी पूंजीवादी विकास के परिणाम हैं। यहां दृष्टव्य है कि पीपुल्स वार ने अनजाने में ही, भूमि हदबन्दी कानूनों के महत्व को स्वीकार कर लिया है क्योंकि वह कहता है कि इनको हल्का कर या उनमें तोड़-मरोड़ कर जमीन के केन्द्रीकरण

को वे प्रोत्साहित कर रहे हैं।

एक बहुत महत्वपूर्ण तथ्य पीपुल्स वार ने खुद ही पेश किया है जो दिखाता है कि देश मे पूंजीवादीकरण की प्रक्रिया कितनी तेज गति से चल रही है। 1991-92 में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 30% था जो 1997-98 में घटकर 24.4% रह गया। यानि 6 सालों में 5.6% घट गया। अक्सर ही यह तर्क दिया जाता है कि भारत एक पूंजीवादी देश नहीं है क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा बहुत ज्यादा है। परन्तु हाल के आंकड़े यह दिखाते हैं कि अब सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा उद्योग से भी नीचे चला गया है। उपरोक्त तेज गिरावट भी बढ़ते पूंजीवादीकरण को ही दर्शाता है। परन्तु इस आंकड़े का यह निहितार्थ ग्रहण करने के बदले पीपुल्स वार यह रोना रोता है कि ऐसा कृषि की उपेक्षा के कारण हो रहा है। जी नहीं, यह समूचे देश के बढ़ते पूंजीवादीकरण के कारण ही हो रहा है।

वैसे इस मामले में नव जनवादी क्रांति की वकालत करने वाले लोग चित भी मेरी, पट भी मेरी की नीति अपनाते हैं। जब सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा तेजी से नहीं गिरता तो वे कहते हैं कि देखो, कृषि में अर्ध सामंतवाद है, देश का पूंजीवादीकरण नहीं हो रहा है। पर यदि यह तेजी से गिरता है तो वे यह कहते हैं कि यह बहुत बुरी बात है, यह कृषि की उपेक्षा के कारण हो रहा है। इस मामले में वे भूमि के संकेन्द्रण वाले सवाल की तरह ही व्यवहार करते हैं एक ओर तो वे यह कहते हैं कि भूमि का संकेंद्रण बहुत ज्यादा है और यह अर्ध सामंतवाद की अभिव्यक्ति है (जमीन जमींदारों के पास है)। दूसरी ओर वे यह कहते हैं कि जमीन का तेजी से संकेंद्रण नहीं हो रहा है इसलिए कृषि क्षेत्र में पूंजीवादी विकास नहीं हो रहा है। वहां अर्ध सामंतवादी ठहराव है। यानि संकेन्द्रण हो तो अर्ध सामंतवाद और न हो तो अर्ध-सामंतवाद।

देहाती क्षेत्र के तेज पूंजीवादीकरण की एक और अभिव्यक्ति है, बढ़ता शहरीकरण। खुद पीपुल्स वार चिन्हित करता है कि शहरों और कस्बों का लगातार फैलाव हो रहा है। देहाती क्षेत्र से लोग वहां लगातार पलायन कर रहे हैं। देहाती क्षेत्र के पूंजीवादीकरण के बिना शहर में इतना तीव्र पलायन नहीं होता, जितना पीपुल्स वार चिन्हित करता है।

यानि कुल मिलाकर, पीपुल्स द्वारा दिए गये अपने ही तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि देश के देहाती इलाकों में भी आज पूंजीवादी उत्पादन संबंध प्रधान हैं। हां, अर्ध सामंती अवशेष भी हैं, पर वे प्रधान नहीं, गौण हैं। वे कहीं कम या कहीं ज्यादा हो सकते हैं, पर हैं वे गौण ही। वे समूचे देश के पैमाने पर उत्पादन प्रणाली के चरित्र को तय नहीं करते।

देश की राजसत्ता पर काबिज एक स्वतंत्र पूंजीपति वर्ग और देहातों में पूंजीवादी उत्पादन संबंधों की प्रधानता। इसके बाद अर्ध-सामंतवाद अर्ध-उपनिवेशवाद का क्या बचता है?

देश में पूंजीवादी उत्पादन संबंध है। पर यह भारतीय पूंजीवाद बहुत ज्यादा संकटग्रस्त है। इसका संकट, 80 के दशक में तेज हुआ और सन् 90 तक वहां पहुंच गया जहां वह पुराने (सार्वजनिक क्षेत्र की प्रधानता वाले) ढांचे के तहत नहीं चल सकता था। इसी समय सोवियत खेमे के पतन और सोवियत संघ के पतन के साथ भारतीय शासक वर्ग की साम्राज्यवादियों से मोल - तोल की क्षमता बहुत कम हो गयी। इन्हीं दोनों चीजों ने उसे 1991 में नयी आर्थिक नीतियां लागू करने की ओर धकेला जो न केवल 70 के दशक वाली बल्कि राजीव गांधी की 'इक्कीसवीं सदी' वाली नीतियों से भी गुणात्मक रूप से भिन्न हैं। इन नीतियों को भारत के पूंजीपति वर्ग की समूची विकास यात्रा से ही समझा जा सकता

है । परन्तु पीपुल्स वार इन्हें समझने का कोई प्रयास नहीं करता और इन गुणात्मक रूप से भिन्न (भारतीय पूंजीवाद के दायरे में) नीतियों को पुरानी नीतियों की निरंतरता घोषित कर देता है । सच तो यह है उसके 1947 के बाद जड़ व परिवर्तनहीन भारत के सांचे में इसे समझा भी नहीं जा सकता । इन नीतियों के बारे में पीपुल्स वार कहता है:

> "भारतीय शासक वर्ग विश्व बैंक, आई.एम.एफ, डब्लू.टी.ओ. और अन्य साम्राज्यवादी एजेन्सियों के आदेशों के आधार पर जो नयी आर्थिक नीतियाँ और ढांचागत समायोजन कार्यक्रम चला रहे है, **जो देश को संपूर्ण रूप से साम्राज्यवाद के चंगुल में धकेल** रहा है, उसके खिलाफ राजनीतिक तरीके से जनता को गोलबंद करो ।" ('Political Resolution', वही, Immediate Tasks-2, अनुवाद व जोर हमारा)

> "ये नीतियां, साम्राज्यवादियों को भारतीय बाजार पर नियंत्रण व इसके संसाधनों की अपनी इच्छा के मुताबिक शोषण की खुली छूट देती हैं ।..." ('Party Programme', वही, Section-15)

> "भारतीय शासक वर्ग नयी आर्थिक नीति और उदारीकरण के नाम पर **साम्राज्यवादियों के हित में पूरे देश को एक बड़े पैमाने पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों व पारदेशीय कम्पनियों को बेच रहे हैं** ।..." ('Strategy and Tactics', page-73 अनुवाद व जोर हमारा)

> "...जनता को शासक वर्गों की नयी औद्योगिक नीति, आर्थिक नीति, तथा निजीकरण की नीति व उन सभी नीतियों के खिलाफ संघर्ष में गोलबंद किया जाना चाहिए **जिसके माध्यम से वे हमारे देश को वैश्वीकरण के नाम पर बेच रहे हैं** ।..." (वही, page-47, अनुवाद व जोर हमारा)

भारत को अर्धसामंती अर्ध-औपनिवेशिक कहने वालों को एक तीखे अंतर्विरोध का सामना करना पड़ता है। ये लोग यह मानते हैं कि भारत का शासक वर्ग साम्राज्यवाद का दलाल है और इनके पीछे से वास्तव में साम्राज्यवाद ही हावी है। 1947 की औपचारिक आजादी झूठी है । साम्राज्यवाद ने पीछे हटकर अपना शोषण और तेज कर दिया। उसके बाद से जो भी नीतियां बनी वे सब साम्राज्यवादियों ने अपने हितों के अनुरूप बनवाईं ।

यदि यह सब सच है और पीपुल्स वार के कार्यक्रम में अक्षरशः यही लिखा हुआ है, तो फिर उपरोक्त उद्धृणों का क्या मतलब है ? यदि सारा कुछ साम्राज्वादियों का ही था, वे ही पर्दे से सारा कुछ नियंत्रित कर रहे थे तो फिर आज क्या है जो उन्हें बेचा जा रहा है ? जो 1947 से ही साम्राज्यवादियों का रहा है, तो आज फिर से उन्हें कैसे बेचा जा सकता है? यदि 1947 से सभी कुछ साम्राज्य के ही नियंत्रण में है, उसके चंगुल में है तो फिर से उसके चंगुल में धकेलने का क्या मतलब है? या पहले वह पूर्ण रूप से उनके चंगुल में नहीं था ? तो यह कैसे हुआ ? और कब हुआ ? यह आंशिक स्वतंत्रता कितनी थी और किस प्रक्रिया के तहत प्राप्त हुयी थी ? आज उसके विघटन की प्रक्रिया क्या है ? यदि ऐसा कुछ है जिसे साम्राज्यवादियों को बेचा जाना है, तो वह उनके नियंत्रण से बाहर कब पैदा हुआ? उसकी उत्पत्ति कथा क्या है ? पीपुल्स वार को इन सवालों के जवाब देने ही होंगे ।

हालांकि पीपुल्स वार अपने 'रणनीति और रणकौश' दस्तावेज (strategy & tactics) में भारतीय दलाल पूंजीपति वर्ग के चार चरणों मे विकास का वर्णन करता है – 1947 से पहले, 1947 से 1969 तक, 1969 से 1985 तक और उसके बाद, लेकिन वह

तीसरे और चौथे चरण में साम्राज्यवाद के साथ संबंधों को परिभाषित नहीं करता । हालांकि ये चार चरण हैं परन्तु साम्राज्यवादियों के साथ भारतीय बुर्जुआ के किसी बदलते संबंधों का यहां वर्णन नहीं है। यहां वर्णन कुछ ऐसा है कि 'चीज जितनी बदलती है, उतनी है वैसी बनी रहती है ।' ऐसे में अचानक 1991 में देश के संपूर्ण रूप में साम्राज्यवाद के चंगुल में फंसने की बात करने लगना या देश को बेचे जाने की बात करने लगना बड़ा अजीब है । जो चीज पहले थी ही नहीं, वह छीनी कैसे जा रही है ? यह तो कुछ ऐसे है जैसे आप बार - बार कहते रहे कि मेरे पास कुछ नहीं है, कुछ नहीं है और फिर एक दिन आप अचानक चिल्लाने लगें कि हाय, मैं लुट रहा हूं । ऐसे में कोई भी पूछेगा कि दोनों में से कौन सी बात सच है ।

पीपुल्स वार की नयी आर्थिक नीति पर यह स्थिति उसके अर्ध-सामंतवाद अर्ध-उपनिवेशवाद के फ्रेमवर्क के कारण है । यदि इसके बदले भारतीय पूंजीपति वर्ग को स्वतंत्र तथा आज भारत को पूंजीवादी मान लिया जाए तो नयी आर्थिक नीति को आसानी से समझाया जा सकता है, और ठीक उन्हीं चरणों में जिनमें पीपुल्स वार ने भारत के पूंजीपति वर्ग के विकास को बांटा है ।

नयी आर्थिक नीति भारत के संकटग्रस्त पूंजीवाद का विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था में एकीकरण है जिसे त्वरित किया सोवियत संघ के पतन ने । अब भारतीय पूंजीपति वर्ग साम्राज्यवाद से अपने सीमित अलगाव को तोड़कर साम्राज्यवाद में एकाकार हो रहा है । सोवियत संघ के पतन और उसके बाद साम्राज्यवादी दबाव ने इसमें उत्प्रेरक की भूमिका अदा की है । भारतीय पूंजीवाद का यह सीमित अलगाव 1969-1982 के काल में सबसे ज्यादा था जबकि 1947-1969 के में उससे कम । हालांकि इन बड़े कालों में भी छोटे-छोटे चरण है । और इस सीमित अलगाव को संभव बनाया एक समय तक समाजवादी खेमे की उपस्थिति ने, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के तूफान और उसके बाद नये आजाद हुए देशों की एकता के प्रयास ने, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद की कमजोरी ने तथा सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद के उदय के बाद दोनो महाशक्तियों की प्रतियोगिता ने । केवल इन सब को ध्यान में रखकर और इतिहास का वस्तुगत आकलन कर ही नयी आर्थिक नीतियों को समझाया जा सकता है। अन्यथा तो वही होगा कि चुराने के लिए कुछ था भी नहीं और चोरी भी हो रही है ।

देश में पिछले 54 सालों के विकास ने परिदृश्य को बदल दिया है और 1991 के बाद यह और तेजी से बदल रहा है।आज देश में अर्ध - सामंती अर्ध-औपनिवेशिक नहीं बल्कि पूंजीवाद संरचना विद्यमान है तथा देश की सत्ता पर काबिज है भारत का पूंजीपति वर्ग । देश की अर्थव्यवस्था पर साम्राज्यवाद प्रभुत्व है पर वह है आर्थिक नव उपनिवेशवाद के रूप में यानि राजनीतिक आजादी और आर्थिक गुलामी (देखें, लाल सलाम-3, 'राष्ट्रीय मुक्ति के संबंध में कुछ बातें') । पर पीपुल्स वार इसे न स्वीकार कर अपनी थीसिस पर अड़ा हुआ है । ऐसा करते हुए वह न केवल कई असमाधेय अंतर्विरोधों में फंस गया है, अपितु वह कुछ राजनीतिक तथ्यों की तोड़-मरोड़ भी कर रहा है । यह उसने किया है वर्गों के विश्लेषण में । आइये अब इसे देखें ।

क्रांति की प्रेरक शक्तियों का वर्णन (Strategy & Tactics दस्तावेज में)करते हुए पीपुल्स वार ने औद्योगिक सर्वहारा की कुल संख्या करीब 7 करोड़ बताई है । इसमें 2.6 करोड़ संगठित क्षेत्र में है जबकि 4-5 करोड़ असंगठित क्षेत्र में । यह कुल कामगार आबादी का भारी हिस्सा बनता है । अब यदि इसमें देहाती सर्वहारा को भी जोड़ लिया जाए तो सहज ही कुल सर्वहाराओं की संख्या कामगार आबादी का बहुमत हो जाती है ।

लेकिन यही तथ्य पीपुल्स वार को स्वीकार नहीं है । वह देश को अर्ध-सामंती अर्ध-औपनिवेशिक मानता है तथा दीर्घकालीन युद्ध को क्रांति का रास्ता घोषित करता है । पुराने सूत्र के हिसाब से दीर्घकालीन लोक युद्ध की मुख्य लड़ाकू ताकत किसान होंगे जबकि सर्वहारा वर्ग नेतृत्वकारी शक्ति होगा । अब यदि सर्वहारा ही कामगार आबादी का बहुमत हो जाए तो सारी थीसिस लड़खड़ा जाती है । कामगार आबादी में सर्वहारा की बहुसंख्या को 'मुख्य लड़ाकू शक्ति, किसान' के सूत्र के साथ फिट नहीं बैठाया जा सकता । ऐसे में पीपुल्स वार ने देहाती सर्वहारा को ही गायब कर दिया है और उसे अर्ध सर्वहारा की श्रेणी (गरीब किसान की श्रेणी) में डाल दिया है । इससे सर्वहारा की संख्या स्वतः ही घट जाती है और किसानों की संख्या बढ़ जाती है ।

पीपुल्स वार सर्वहारा श्रेणी के तहत केवल औद्योगिक (संगठित व असंगठित क्षेत्र) तथा बागानों में काम करने वाले मजदूरों की गिनती करता है। इसके बाद वह खेतिहर और गरीब किसान की श्रेणी पर आ जाता है ।

> "2 **खेतिहर मजदूर एवं गरीब किसान** : सामान्यत : भूमिहीन किसानों (अर्धसर्वहारा) के पास अपने खुद के खेती के औजार खुद की जमीन नही होती। वे या तो पूर्णतया या मुख्य रूप से श्रम शक्ति बेचकर जीवन निर्वाह करते है ।
>
> "गरीब किसानों में से कुछ के पास नाम मात्र के लिए जमीन होती है या वे लगान पर थोड़ी सी जमीन ले लेते है । इसी प्रकार कुछ के पास नाम मात्र के लिए खेती के औजार होते हैं । जमीन का लगान व ब्याज चुकाने के साथ-साथ वे अपनी श्रम शक्ति भी बेचते हैं इस प्रकार उनका इन सब तरीकों से शोषण होता है ।
>
> "वे ग्रामीण जनता का 60-65 प्रतिशत हिस्सा है। भारतीय समाज में रहने वाले सभी वर्गों में से गरीब एवं भूमिहीन किसान, सर्वहारा के सबसे दृढ़ संश्रयकारी हैं।
>
> "3 **अर्ध सर्वहारा** : अर्ध सर्वहारा का प्रमुख हिस्सा खेतिहर मजदूर और गरीब किसान की विशाल आबादी है।"... ('Strategy and Tactics', Page-14, अनुवाद हमारा)

जैसा कि हम देखते हैं यहां केवल शीर्षक में खेतिहर मजदूर हैं, वर्णन में खेतिहर मजदूर गायब है जब कि वर्णन में भूमिहीन किसान व गरीब किसान के अन्य हिस्से हैं । यदि भूमिहीन किसान से ही पीपुल्स वार का आशय खेतिहर मजदूर है तो यह बात तुरंत नोट करने की है कि वह उसे अर्ध सर्वहारा की श्रेणी में रख रहा है । अगली श्रेणी में - अर्ध सर्वहारा-में तो वह खुलेआम खेतिहर मजदूर को अर्ध सर्वहारा की श्रेणी मे रख भी देता है –

> "अर्ध सर्वहारा का प्रमुख हिस्सा खेतिहर मजदूर और गरीब किसान की विशाल आबादी है।"

यहां यह साफ है कि पीपुल्स वार खेतिहर मजदूर, गरीब किसान तथा अर्ध-सर्वहारा की श्रेणियों का आपस में घाल-मेल कर रहा है। परिणाम यह होता है कि देहाती सर्वहारा (खेतिहर मजदूर) गायब हो जाता है और बच जाता है किसान। लेकिन इन श्रेणियों का आपस में घाल-मेल नहीं किया जा सकता । आइये, फैसले के लिए माओ के पास चलते हैं।

माओ ने अपने वर्गों के विश्लेषण में तीन जगह खेतिहर मजदूर का वर्णन किया है और हर जगह उसे गरीब किसान से अलग रखा है । देखिए:

> "सर्वहारा वर्ग।..., चीन में अभी तक आधुनिक पूंजीवादी खेती बहुत कम होती है। जिसे हम देहाती सर्वहारा कहते है, उसका अर्थ है साल, महीने या दिन के हिसाब से काम पर लगाये जाने वाले खेत-मजदूर। इनके पास न जमीन है, न खेती-औजार हैं और न थोड़ी सी भी पूंजी है । वे जिन्दगी बसर करने के लिए केवल अपनी श्रम शक्ति को ही बेच सकते हैं। दूसरे मजदूरों की तुलना वे सबसे ज्यादा घंटे काम करते हैं, सबसे कम तनख्वाह पाते हैं, सबसे खराब हालत में जीवन बिताते हैं और उन्हें काम मिलने की बात सबसे कम भरोसे की है । इस तरह के लोग गांवों में अपने को सबसे ज्यादा तंगी में पाते हैं और किसान आंदोलन में उनकी जगह वैसी ही महत्वपूर्ण है जैसी गरीब किसानों की।" (माओ, 'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण', संकलित रचनाएं, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पीकिंग 1971, ग्रन्थ-1, पृष्ठ-13-14)

और एक जगह,

> "**5. मजदूर**
>
> आम तौर पर मजदूरों (जिनमें, खेत मजदूर भी शामिल हैं) के पास जमीन या औजार बिलकुल नहीं होते । उनमें से कुछ ही लोग ऐसे होते हैं जिनके पास बहुत थोड़ी जमीन और बहुत थोड़े औजार होते हैं । मजदूर लोग पूर्णतः या मुख्यतः श्रमशक्ति बेचकर जीविका कमाते हैं ।" (माओ, 'देहाती क्षेत्रों में वर्ग विश्लेषण', वही, पृष्ठ-235)

और अंत में;

> **5. सर्वहारा वर्ग**
>
> चीन के सर्वहारा वर्ग में आधुनिक औद्योगिक मजदूरों की संख्या 25 से 30 लाख तक है, शहरों में छोटे उद्योग धन्धों और दस्तकारियों में काम करने वाले मजदूरों और दुकान कर्मचारियों की संख्या 1 करोड़ 20 लाख के करीब है; इसके अलावा एक बड़ी संख्या देहाती सर्वहारा (खेत मजदूरों) और शहरों और देहातों के अन्य सम्पत्तिहीन लोगों की है ।" (माओ, 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी', ग्रन्थ-2, पृष्ठ-571-572)

इस तरह हम देखते हैं कि खेत मजदूरों को स्पष्ट तौर पर मजदूर या सर्वहारा की श्रेणी में रखा गया है। यही नहीं तीनों ही जगह यह गरीब किसान की श्रेणी से अलग हैं । तीनों ही जगह गरीब किसान की श्रेणी अलग से दी गयी है। वह इस प्रकार है:

> "...गरीब किसानों के पास अपनी जमीन नहीं होती और साल भर की जुताई-बुवाई के बाद फसल का आधा हिस्सा या उससे भी कम उनके हाथ आता है ।... गरीब किसान देहात के आसामी किसान हैं जिनका शोषण जमींदार करते हैं ।... गरीब किसानों की एक श्रेणी के पास अपेक्षाकृत रूप से काफी खेती-औजार होते है और कुछ पूंजी भी होती है । ...वे अपनी श्रम शक्ति का एक हिस्सा बेच सकते हैं । ... .जहां तक गरीब किसानों की दूसरी श्रेणी का संबंध है, उनके पास न तो खेती के पर्याप्त औजार हैं और न पूंजी होती है।... उनके लिए अपनी श्रम शक्ति का एक हिस्सा बेचना और भी जरूरी हो जाता है।..." (माओ, 'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण', वही, पृष्ठ 10-11)

आगे,

> "**4. गरीब किसान**
>
> कुछ गरीब किसानों के पास खेती की जमीन का सिर्फ एक हिस्सा ही खुद का होता है और उनके पास खेती औजार भी पूरे नही होते; अन्य गरीब किसान ऐसे होते हैं जिनके पास जमीन बिलकुल नहीं होती और खेती औजार केवल अपूर्ण मात्रा में होते हैं । आमतौर पर गरीब किसानों को खेती की जमीन लगान पर लेनी पड़ती है और दूसरों को लगान या सूद देकर अथवा अपने श्रम को अंशतः भाड़े पर उठाकर उन्हें दूसरों के शोषण का शिकार बनना पड़ता है ।" (माओ, 'देहाती क्षेत्रों में वर्ग विश्लेषण', वही, पृष्ठ-234)

और अंत में,

> **"तीसरे गरीब किसान** । चीन में खेत मजदूरों समेत गरीब किसानों की संख्या देहातों की आबादी का लगभग 70 प्रतिशत है। गरीब किसान व्यापक किसान जन समुदाय है, जिसके पास बिलकुल जमीन नहीं अथवा बहुत कम जमीन है और ये लोग लोग देहातों का अर्ध सर्वहारा हैं तथा ये लोग चीनी क्रांति की सबसे भारी तादात वाली प्रेरक शक्ति, सर्वहारा वर्ग के स्वाभाविक और अत्यन्त विश्वसनीय संश्रयकारी तथा चीन की क्रांतिकारी शक्तियों का एक मुख्य दस्ता है ।" (माओ, 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी', वही, पृष्ठ-571)

जहां तक अर्ध सर्वहारा वर्ग का संबंध है, माओ यह कहते हैं:

> "अर्ध सर्वहारा वर्ग । जिसे यहां अर्ध सर्वहारा वर्ग कहा गया है उसमें पांच श्रेणियां हैः (1) अर्ध भूमिधर किसानों की भारी बहुसंख्या, (2) गरीब किसान, (3) छोटे दस्तकार (4) दुकान कर्मचारी और (5) फेरीवाले। ..." (माओ, 'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण', वही, पृष्ठ-9)

यहां किसी गलत फहमी से बचने के लिए पहले ही एक बात स्पष्ट कर दें। माओ जब यह कहते हैं कि

> "चीन में खेत मजदूरों समेत गरीब किसानों की संख्या देहाती आबादी का 70 प्रतिशत है"

तो वे खेत मजदूरों को गरीब किसानों की श्रेणी में नहीं रख रहे हैं और न ही अर्ध सर्वहारा की श्रेणी में। वे तो केवल चीनी देहातों में इनकी संयुक्त संख्या बता रहे हैं। क्योंकि इसी जगह वे शहरों में दस्तकारियों में लगे मजदूरों और दुकान कर्मचारियों की संख्या एक साथ गिनते हैं और 1 करोड़ 20 लाख बताते हैं जबकि वे दुकान कर्मचारी को अर्ध सर्वहारा की श्रेणी में रखते हैं ।

इस मामलें में संदेह की गुंजाइश इसलिए नहीं हैं कि माओ यहां साफ तौर पर सर्वहारा में "देहाती सर्वहारा (खेत मजदूरों)" को रखते हैं ।

माओ के उपरोक्त उद्धरणों से एकदम स्पष्ट हैं कि भूमिहीन किसान को, जो गरीब किसान का हिस्सा होता हैं और इसी कारण अर्ध सर्वहारा का भी हिस्सा होता हैं, किसी भी तरह खेतिहर मजदूर नहीं कहा जा सकता । इसी तरह खेतिहर मजदूर न तो गरीब किसान हैं और न ही अर्ध सर्वहारा। वह सर्वहारा का हिस्सा हैं। इसीलिए पीपुल्स वार ने खेतिहर मजदूर, भूमिहीन किसान व अर्ध सर्वहारा का जो घाल मेल किया हैं, वह निहायत गलत हैं । वह इसलिए भी कि पीपुल्स वार बहुत अच्छी तरह से इन श्रेणियों से वाकिफ हैं क्योकि उसने अपने वर्गों के वर्णन में शब्द ही नहीं; पूरे के पूरे वाक्य माओ से लिए हैं । अतः यह घालमेल किसी चूक का परिणाम नहीं हैं ।

पीपुल्स वार अपनी रक्षा में यह नहीं कह सकता कि उसने ग्रामीण सर्वहारा को अलग से गिन लिया हैं तथा यहां जिसकी बात हो रही है वह मूलतः भूमिहीन किसान है । क्योंकि यदि बात यह है तो खेतिहर मजदूर शब्दावली किसी भी हाल में प्रयोग नहीं की जानी चाहिए और न ही उसे अर्ध सर्वहारा की श्रेणी में डाला जाना चाहिए । दूसरे पीपुल्स वार ने जहां ग्रामीण सर्वहारा का वर्णन किया है (सर्वहारा श्रेणी के तहत) वहां केवल बागान मजदूरों की चर्चा है । वह हिस्सा इस प्रकार है ।

> "औद्योगिक सर्वहारा के अलावा भी एक बड़ी संख्या ग्रामीण सर्वहारा की है। ये खेत मजदूर मुख्यत : बड़े-बड़े बागानों और फार्मों में जैसे कि कॉफी, चाय, कोको, नारियल, आम, रबड़, सुपारी, चीनी, फल व सब्जियां में काम करते है । उनके अपने उत्पादन के कोई साधन नहीं होते और वे बड़े पूंजीवादी जमींदारों, दलाल पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों, जो इन बागानों के मालिक है ; को अपनी श्रम शक्ति बेचकर गुजारा करते हैं ।" ('Strategy and Tactics', पृष्ठ - 13 अनुवाद हमारा)

यहां जिन मजदूरों की चर्चा की जा रही हे वे बड़े-बड़े बागानों और फार्मों में काम करते हैं और जिनके मालिक बड़े पूंजीवादी जमींदार, दलाल पूंजीपति व साम्राज्यवादी हैं । इनमें उत्पादन भी कुछ खास मालों का होता है । बहुत साफ है कि ये एकदम विशिष्ट श्रेणी के कृषि पूंजीवादी उद्यम हैं । लेकिन इसीलिए वे मध्यम व छोटे फार्मों से अलग हैं जो पूरे हिन्दुस्तान में फैले हुए है और जिनके मालिक तथाकथित जमींदार व धनी किसान हैं। और जिनमें धान, गेंहू, आलू व अन्य नकदी फसले होती हैं खेत मजदूरों की संख्या में शामिल नहीं है । ये अलग हैं । और इन्हीं को पीपुल्स वार ने भूमिहीन किसान और अर्ध सर्वहारा की श्रेणी में डाल दिया है ।

हम यूं ही बात का बतंगड़ नहीं बना रहे हैं । ऊपर से थोड़े से घालमेल दिखाने वाले मामले के भीतर बहुत बड़ी रणनीतिक लाइन छिपी हुयी है । खुद पीपुल्स वार के अनुसार देश के कुछ हिस्से में कृषि में पूंजीवादी विकास हुआ है । हमारा कहना यह है कि बाकी हिस्से में भी थोड़ा कम मुखर रूप में यही सच्चाई है । ऐसे में देहातों में सब जगह भारी मात्रा में खेत मजदूर पैदा हुए हैं जिनका धनी किसानों व कुलकों से सीधा संघर्ष बनता है । पहले कभी की तुलना में आज खेत मजदूर व गरीब किसान में फर्क ज्यादा है । ऐसे में सारे देश में खेत मजदूरों (देहाती सर्वहारा) की गिनती अलग से की ही जानी चाहिए । यदि यह की जाती है तो हम पायेंगे कि देश मे आज सर्वहारा (औद्योगिक व कृषक दोनों) समूची कामगार आबादी में बहुसंख्या में है ।

खुद पीपुल्स वार के अनुसार औद्योगिक मजदूरों की संख्या 7 करोड़ है । 1991 के सरकारी आंकड़ो के अनुसार खेत मजदूरों की संख्या 7.38 करोड़ है । यानि देश में कुल औद्योगिक व कृषक मजदूरों की संख्या 14 करोड़ से ज्यादा बैठती है । इसके मुकाबले किसानों की संख्या केवल 10.71 करोड़ है । यानि कुल मजदूरों की संख्या किसानों की संख्या से काफी ज्यादा है । वैसे 1991 की जनगणना को दूसरी तरह से देखें तो देश की कुल कामगार आवादी - 27.89 करोड़ में से केवल 38.4% किसान (10.71 करोड़) हैं । शेष 61.6% कामगार गैर कृषक हैं । निश्चय ही इसमें भारी संख्या मजदूरों की होगी । (आकड़े लाल सलाम -3, पृष्ठ 15 से)

अतः हम न तो बात-बतंगड़ बना रहे है और न यूं ही पीपुल्स वार पर राजनीतिक तोड़-मरोड़ का आरोप लगा रहे है। जो मसला जिरे बहस है वह भारतीय इंकलाब की बहुत महत्वपूर्ण, एक दम बुनियादी चीज है । यदि यह सच है कि आज सर्वहारा बहुमत में है तो फिर क्रांति की वह रणनीति नहीं हो सकती जो नव जनवादी क्रांति में होती है। कोई चाहे या न चाहे, उसे सर्वहारा समाजवादी क्रांति को एजेण्डे पर लाना ही पड़ेगा । जो लोग आज भी नव जनवादी क्रांति करना चाहते है और उसमें किसान को मुख्य लड़ाकू शक्ति मानतें है, उनके लिए यह एकमात्र तथ्य अपनी जगह से हिलने के लिए काफी है । पीपुल्स वार इस बात से वाकिफ है और इसलिए इस महत्वपूर्ण, बुनियादी सवाल पर इतना घाल-मेल किया गया है, जबकि यहीं सबसे ज्यादा स्पष्टता की जरुरत है । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लेनिन ने तीसरे इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में (कृषि सवाल पर थीसिसें) बहुत जोर देकर कहा था कि हमें देहाती सर्वहारा के अलग संगठन बनाने चाहिए तथा उनका गरीब किसानों से फर्क किया जाना चाहिए । दुर्भाग्य यह है कि पीपुल्स वार इसी फर्क को धूमिल कर रहा है ।

देहाती सर्वहारा के इस महत्वपूर्ण सवाल के बाद हम राष्ट्रीय बुर्जुआ की श्रेणी को लेते हैं । यहाँ हम पायंगे कि पीपुल्स वार का राष्ट्रीय बुर्जुआ के प्रति जो रुख है वह माओ के रुख से भिन्न है तथा काफी दिक्कततलब है । पीपुल्स वार कहता हैः

> ".... भारतीय सर्वहारा का साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह बुर्जुआ व बड़े जमींदार वर्ग द्वारा उत्पीड़न किया जा रहा है ।..." ('Strategy and Tactics', वही पृष्ठ -13, अनुवाद हमारा)

यहां पीपुल्स वार कहना चाहता है कि सर्वहारा का उत्पीड़न दलाल नौकरशाह बुर्जुआ करता है और राष्ट्रीय बुर्जुआ उत्पीड़न नहीं करता । हम पूछना चाहेंगे क्यों ? वह सर्वहारा की श्रम शक्ति को काम पर लगाकर मुनाफा नहीं कमाता? क्या वह दलाल बुर्जुआ की तरह सर्वहारा से कम से कम वेतन में ज्यादा से ज्यादा काम नहीं करवाता ? क्या वह सर्वहारा को अमानवीय स्थितियों में नहीं रखता ? या वह सर्वहारा को हर रोज लड्डू-पेड़े बांटता है ?

बल्कि भारत में तो बात तथ्यतः उल्टी है । पीपुल्स वार छोटे वह मध्यम पूंजीपतियों को राष्ट्रीय पूंजीपति मानता है । खुद उसी के अनुसार करीब 4.5 करोड़ मजदूर इनके यहां काम करते हैं । आंकड़े चाहे जो हों, यह सच है कि इस क्षेत्र में मजदूर ज्यादा हैं । और यहां मजदूर का उत्पीड़न भी सबसे ज्यादा है । उन्हें कानून द्वारा प्रदत्त सुविधाएं भी नहीं मिली हुयी हैं । सबसे कम युनियनीकृत मजदूर यहीं हैं। इसके मुकाबले बड़े उद्योगों के मजदूरों की हालत तब भी कुछ अच्छी है, तथाकथित दलाल बुर्जुआ के उद्यमों में !

तब फिर राष्ट्रीय बुर्जुआ के साथ यह नर्मी क्यों ? शायद इसलिए कि हमें उसे क्रांति में साथ लाना है, उसके साथ संयुक्त मोर्चा बनाना है ? पर क्या वह क्रांति में इसलिए साथ आयेगा कि हमने अपने दस्तावेजों में उसके बारे में कुछ अच्छी बातें लिख दी हैं या उसके बारे में कुछ बुरी बातें कहने से बचें है ? नहीं । वह इसलिए साथ आयेगा क्योंकि उसके क्रांति में कुछ हित होंगे। यदि क्रांति से उसके कोई हित नहीं सधते हैं तो वह हमारे साथ नहीं, आयगा, चाहे हम अपने दस्तावेजों में अच्छी बात लिखें या बुरी ।

वैसे हम याद दिला दें कि माओ इस राष्ट्रीय बुर्जुआ के प्रति मोह या नरमी के रूख के शिकार नहीं थे।

उन्होंने साफ कहा था-

> "उन्हें (मजदूरों को) साम्राज्यवादियों, युद्ध सरदारों और पूंजीपतियों का अत्यन्त निष्ठुर व्यवहार सहना पड़ता है" ('चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण', ग्रन्थ-1, पृष्ठ-13)

तथा

> "वह (सर्वहारा) तीहरे उत्पीड़न-साम्राज्यवाद, पूंजीपति वर्ग और सामंती शक्तियों के उत्पीड़न-का शिकार है" ('चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी', ग्रन्थ-2, पृष्ठ-572)।

उन्होंने सीधे पूंजीपति वर्ग कहा और इस पूंजीपति वर्ग में दलाल व राष्ट्रीय पूंजीपति दोनों आते है । यानि माओ की दृष्टि में दलाल व राष्ट्रीय दोनों पूंजीपति वर्ग दोनों सर्वहारा का शोषण करते हैं । केवल दलाल नहीं, जैसा कि पीपुल्स वार सोचता है ।

इसी तरह पीपुल्स वार सोचता है कि राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग अपने दुरंगे चरित्र के कारण कुछ समय और कुछ हद तक क्रांति में भाग ले सकता है। लेकिन जब उनसे यह सवाल पूछा जाता है कि आज भारत में यह राष्ट्रीय बुर्जुआ कहां है, उसका संगठन कहां है, उसके राजनीतिक नुमाइंदे कहां हैं तो कुछ इस तरह का जवाब मिलता है:

> "...राष्ट्रीय बुर्जुआ को अपने ही अस्तित्व के लिए भारतीय सरकार व साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में आना ही होगा । हालांकि अपने वर्गीय चरित्र के कारण वे अपने संघर्ष में अवश्य ही डगमग होंगे । मजदूर वर्ग को सचेतन रूप से छोटे राष्ट्रीय बुर्जुआ को अपनी ओर लाने का प्रयास करना होगा **जो साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों के आगे बढ़ने से अपनी भूमिका निभाएंगे** ।..." ('Political Resolution', वही, Section-39, अनुवाद व जोर हमारा)

यानि अभी राष्ट्रीय बुर्जुआ अदृश्य है पर साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों के आगे बढ़ने पर वह आगे आ जाएगा । लेकिन पीपुल्स वार का ऐसा सोचना पूंजीपति वर्ग के आम चरित्र के विपरीत है जो क्रांति के आगे बढ़ने से पीछे हटता है। माओ राष्ट्रीय बुर्जुआ के

बारे में कहते हैं:

> "...जब वह विदेशी पूंजी की मार और युद्ध सरदारों के उत्पीड़न से त्रस्त होता है, तो उसे क्रांति की जरूरत महसूस होती है और वह साम्राज्यवाद व युद्ध सरदारों के खिलाफ क्रांतिकारी आंदोलन का पक्षपोषण करता है । 'लेकिन जब देश में सर्वहारा वर्ग क्रांति में जुझारूपन के साथ हिस्सा लेता है और देश के बाहर अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग इस क्रांति को सक्रिय सहायता देता है, जिससे उसे यह महसूस होने लगता है कि एक वर्ग के रूप में आगे बढ़कर बड़े पूंजीपतियों के वर्ग के स्तर पर पहुंचने की उसकी इच्छा के विफल होने का खतरा पैदा हो गया है तो क्रांति के प्रति वह संदेह का रूख अपना लेता है ।..." (माओ, 'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण', वही, ग्रन्थ-1, पृष्ठ-5)

पुनः,

> "लेकिन दूसरी ओर उसमें साम्राज्यवाद और सामंतवाद का मुकम्मिल विरोध करने के साहस का अभाव है क्योंकि वह आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से कमजोर है और साम्राज्यवाद व सामंतवाद के साथ अपने आर्थिक सम्बन्धों को उसने अब भी पूरी तरह नहीं तोड़ा है। जब जनता की क्रांतिकारी शक्तियां विकसित होकर मजबूत बन जाती है, तो यह बात और स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है।" (माओ, 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी', वही, ग्रन्थ-2, पृष्ठ-565)

इन दोनों ही उद्धरणों में माओ कहते हैं कि क्रांति के आगे बढ़ने के साथ राष्ट्रीय बुर्जुआ के पीछे हटने का खतरा पैदा हो जाता है। लेकिन पीपुल्स वार माओ से उल्टी सोच रखता है । उसके अनुसार अभी कहीं दिखाई न पड़ने वाला बुर्जुआ क्रांति के आगे बढ़ने के साथ क्रांति में शामिल हो जाएगा ।

सच बात तो यह है कि राष्ट्रीय बुर्जुआ भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की केवल कल्पना में है । चीन में उसका वास्तविक अस्तित्व था। लेकिन भारत में नहीं है । भारत में एक ही पूंजीपति वर्ग है। वह छोटा-बड़ा, एकाधिकारी-गैर एकाधिकारी तो है, पर दलाल व राष्ट्रीय में विभाजित नहीं है । और यह सारा का सारा बुर्जुआ वर्ग आज जनता का दुश्मन है। इसीलिए तथाकथित राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग कहीं नहीं दिखाई देता ।

राष्ट्रीय बुर्जुआ के बारे में ये सारी बातें कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के जड़सूत्रों का परिणाम है, वास्तविकता के विश्लेषण से निकाले गये निष्कर्ष नहीं ।

वैसे इस हिस्से का समापन करते हुए हम एक बात नोट कर लें। पीपुल्स वार ने अपने समाज विश्लेषण में भारत में कुछ देहाती हिस्सों में पूंजीवाद के मौजूद होने की बात कही है । लेकिन नवजनवादी क्रांति के जो प्रमुख कार्यभार गिनाए गये हैं उसमें सामूहिकीकरण और सरकारी कृषि फार्मों का कहीं जिक्र नहीं है। क्या क्रांति के बाद पंजाब - हरियाणा जैसे पूंजीवादी इलाकों में जमीन खेतिहर सर्वहारा को बांटी जाएगी ? या पीपुल्स वार यह सोचता है कि चूंकि नवजनवादी क्रांति की मंजिल है, इसीलिए कोई भी समाजवादी कदम नहीं उठाये जाने चाहिए, भले ही परिस्थितियां इसकी मांग कर रही हों ?

III

दीर्घकालीन लोक युद्ध का रास्ता : एक विभ्रम

पीपुल्स वार का कार्यक्रम कहता है:

> "हमारे समाज का अर्ध-सामंती अर्ध - औपनिवेशिक चरित्र, यानि असमान विकास, तीव्र खेतिहर अन्तर्विरोध, ग्रामीण इलाकों के विशाल क्षेत्र में सभी-जनवादी अधिकारों की

वास्तविक अनुपस्थिति और हमारे देश की विशालता के साथ-साथ ग्रामीण इलाकों में अपेक्षाकृत राज्य मशीनरी की कमजोर पकड़ ने हमारा मार्ग निर्धारण किया है और यह मार्ग दीर्घकालीन लोक युद्ध का मार्ग है। यह रास्ता है गांवों द्वारा शहरों को घेरना और शहरों में सत्ता पर निर्णायक कब्जे द्वारा देशव्यापी विजय की ओर बढ़ना। ग्रामीण इलाका हमारे कामकाज का मुख्य केन्द्र होगा।" ('Party Programme', वही, Section-24, अनुवाद हमारा)

कार्यक्रम में इस आम सूत्रीकरण के बाद 'रणनीति और रणकौशल' (strategy & tactics) में विस्तार से यह बताया गया है कि भारत के दीर्घकालीन लोक युद्ध की विशेषताएं क्या है, और वह क्यों सफल होगा। लेकिन इसका वर्णन करने के पहले यह बताया गया है कि किन स्थितियों में आम विद्रोह के द्वारा क्रांति होगी तथा किन स्थितियों में दीर्घकालीन लोक युद्ध द्वारा (माओ द्वारा प्रस्तुत यह आम प्रस्थापना **लाल सलाम** के इसी अंक में उद्धृत है)। इसके बाद यह कहा गया है कि भारत की क्रांति चीनी क्रांति के रास्ते का अनुसरण करेगी।

हम शुरू में ही पीपुल्स वार से एक सवाल करेंगे। माना कि भारत में सर्वहारा के नेतृत्व में मजदूर-किसान संश्रय पर आधारित जनवादी क्रांति होगी। पर यह क्रांति 1905-7 या फरवरी 1917 की रूसी बुर्जुआ जनवादी क्रांति की तरह आम बगावत (insurrections) के रास्ते से क्यों नहीं होगी ? उसके पहले की भी बुर्जुआ जनवादी क्रांतियां आम बगावत के द्वारा ही हुई थीं। रूसी बुर्जुआ जनवादी क्रांति भी, सर्वहारा के नेतृत्व में, आम विद्रोह के द्वारा ही हुई। फिर भारतीय क्रांति ऐसी क्यों नहीं होगी ? आज भारत में क्रांति पूर्व रूस के मुकाबले सर्वहारा की कुल कामगार आबादी में संख्या बहुत ज्यादा है। वस्तुतः वह कामगार आबादी की बहुसंख्या है। भारत के देहातों में भी पूंजीवाद का विकास रूस के मुकाबले ज्यादा हुआ है। भारत में न तो रूस की तरह निरंकुशशाही है और न ही सामंतों का शासन। यहां औपचारिक जनवाद है और औपचारिक तौर पर संसद भी। आज की दुनिया भी फरवरी 1917 से काफी आगे है। यानि हर लिहाज से भारत क्रांति पूर्व रूस से आगे है। केवल एक क्षेत्र में भारत की स्थिति रूस के मुकाबले दिक्कत तलब है। रूस एक साम्राज्यवादी देश था जबकि भारत खुद साम्राज्यवाद के चंगुल में है। फिर भारत में रूस की तरह आम-विद्रोह क्रांति का रास्ता क्यों नहीं होगा ? क्यों नहीं, इसमें क्रांति की मुख्य शक्ति मजदूर होंगे ?

पर पीपुल्स वार इस तरह नहीं सोचता। वह तो, जैसा कि हमने पहले ही कहा है, एक स्वयं सिद्ध प्रस्थापना से निष्कर्ष निकालता है कि भारत में क्रांति का रास्ता दीर्घकालीन लोक युद्ध का रास्ता होगा। और इसे वह रूसी व चीनी क्रांतियों के अनुभव से सीखना कहता है।

पर आइये देखें कि वह भारत के दीर्घकालीन लोकयुद्ध की क्या विशेषताएं गिनाता है। वे ये हैं:

"1. भारत असमान आर्थिक, सामाजिक व राजनीति विकास वाला एक विशाल अर्ध-सामंती, अर्ध औपनिवेशिक देश है। इसमें कृषि से जुड़ी जनता की बहुलता है जिसे कृषि क्रांति की आवश्यकता है। इसमें सशस्त्र संघर्ष चलाने के लिए अनुकूल भूभाग वाले कई रणनीतिक क्षेत्र हैं।

2. हमारा दुश्मन बड़ा और शक्तिशाली है जिसके पास एक केन्द्रीकृत राज्य मशीनरी व एक सुसज्जित आधुनिक सेना है।

3. भारत में कम्युनिस्ट पार्टी और क्रांतिकारी आंदोलन काफी कमजोर हैं।

4. हमारा देश राष्ट्रीयताओं के लिए कैदखाना है जो अपने आत्म निर्णय के अधिकार के लिए भारतीय राज्यसत्ता के विरुद्ध कठोर संघर्ष चला रही है।

5. हमारी क्रांति एक ऐसे समय पर घट रही है जब साम्राज्यवाद एक चौतरफा संकट से घिरा है और विश्व के सभी बुनियादी अंतर्विरोध तीव्र हो रहे हैं।" ('Strategy and Tactics', Page-24, अनुवाद हमारा)

आइये, अब इनमें से एक-एक कर के देखें।

1. भारत में मौजूद असमानता के बारे में पीपुल्स वार कहता है:

"भारत की आर्थिक एवं राजनीतिक विकास में असमानता बिलकुल स्पष्ट है। एक ओर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है जिसे कि अधिकाधिक साम्राज्यवादी विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया गया है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था ने एक विशाल औद्योगिक सर्वहारा समुदाय की व अन्य गैर औद्योगिक प्रतिष्ठानों में दिहाड़ी मजदूरों की लगभग सात करोड़ की संख्या को जन्म दिया है।...

"दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्था एक प्रबल अर्ध सामंती आधार के साथ और उसके ऊपर मौजूद है। हालांकि पूंजीवादी संबंध भारतीय ग्रामीण सामंती ढांचे में घुसपैठ कर रहे हैं और साम्राज्यवाद की आवश्कताओं के अनुरूप उन्हें आंशिक रूप में बदल रहे हैं, अर्ध सामंती आधार और इसकी अधिरचना में एक क्रांतिकारी बदलाव कर पाना असंभव है... ग्रामीण क्षेत्रों में भी अत्यधिक असमानता है जहां गुजारे की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ बागान अर्थव्यवस्था व नकदी फसलों की उपज भी विद्यमान है।" ('Strategy and Tactics', Page-25, अनुवाद हमारा)

इन सबसे और यह देखते हुए कि भारत की 70% जनता गांवों में रहती है, पीपुल्स वार निष्कर्ष निकलता है कि भारत में दीर्घकालीन लोक युद्ध का रास्ता ही क्रांति का रास्ता होगा। यहां पीपुल्स वार ने दो तरह की असमानता दिखाई है। एक तो पूंजीवादी शहरों और अर्ध सामंती देहातों के बीच असमानता तथा दूसरा गांवों में भी पूंजीवादी खेती व अर्ध सामंती खेती के बीच असमानता। लेकिन हम यह जानना चाहेंगे कि इन दोनों असमानताओं का क्षेत्रवार सत्ता पर कब्जे से क्या संबंध है? क्षेत्रवार सत्ता पर कब्जे के लिए कम से कम क्षेत्रीय असमानता की बात की जानी चाहिए जो यहां कहीं नहीं है। वैसे यदि क्षेत्रवार सत्ता पर कब्जे के लिए पीपुल्स वार क्षेत्रीय असमानता की बात करता है तो हम उससे पूछेंगे कि महोदय आप हमें ऐसे पूंजीवाद के बारे में बताइये जो बिना असमानता के होता है, जो हर जगह समान विकास करता है। क्या असमान विकास पूंजीवाद का एक महत्वपूर्ण आम नियम नहीं है ! तब क्षेत्रीय असमानता को अर्ध सामंतवाद का चरित्र मानकर क्षेत्रवार सत्ता पर कब्जे की बात कैसे करें ?

रही बात इस असमानता की कि भारत में पूंजीवाद और अर्ध सामंतवाद एक साथ मौजूद है तो हम पहले ही कह आये हैं कि भारत में यह आज यथार्थ नहीं है। माओ ने इस असमानता का मतलब यह बताया था कि चीन में एकीकृत पूंजीवादी व्यवस्था नहीं है। परन्तु आज भारत की सच्चाई है कि यहां एक एकीकृत पूंजीवादी व्यवस्था मौजूद है। एक केन्द्रीकृत राज्य मशीनरी तथा एक केंद्रीकृत सेना तो अधिरचना के स्तर पर इसी आर्थिक आधार की अभिव्यक्ति है। और ठीक इसी कारण भारत में क्षेत्रवार कब्जे की बात नहीं सोची जा सकती।

सच बात तो यह है कि पीपुल्स वार द्वारा ऊपर गिनाई गयी दोनों असमानताएं क्षेत्रवार कब्जे के लिए तर्क प्रस्तुत नहीं करती क्योंकि उनका क्षेत्र से सम्बन्ध ही नहीं है। उल्टे वे दोनों ही देश के पूंजीवादी विकास को चिन्हित करती हैं। जरा सोचिए, 28 करोड़

कामगार में से 7 करोड़ सर्वहारा (खेत मजदूरों को छोड़कर) ! यानि एक चौथाई ! देहातों में भी इन्हीं के अनुसार पूंजीवाद की घुसपैठ ! फिर भी क्रांति दीर्घकालीन लोक-युद्ध के रास्ते होगी ! हम फिर कह दें कि हमारे देश की स्थिति फरवरी क्रांति से भी बेहतर है – पूंजीवादी विकास के मामले में । अतः पीपुल्स वार का यह तर्क कहीं से भी दीर्घकालीन लोक युद्ध के रास्ते को साबित नहीं करता ।

पीपुल्स वार का कहना है कि चूंकि देहातों में संकट बहुत तीखा है और वहां कृषि क्रांति एजेण्डे पर है अतः वे क्रांति के केन्द्र होंगे । निश्चय ही गावों में संकट काफी तीव्र है। पर शहरों में संकट कम तीखा नहीं है। भीषण बेरोजगारी के दौर में छंटनियां कम तीखा संकट नहीं पैदा कर रही है । रही बात गावों के संकट की तो, वह पूंजीवादी विकास के कारण है । यह संकट पूंजीवादी रिश्तों ने पैदा किया है। पंजाब, हरियाणा व आंध्रप्रदेश में आत्म हत्या कर रहा एक-एक किसान पूंजीवाद के कारण, देशी - विदेशी बाजार की शक्तियों की मार के कारण आत्म हत्या कर रहा है, किसी जमींदार के अत्याचार के कारण नहीं । ऐसे में यह कहना कि देहातों का तीखा संकट दीर्घकालीन लोक युद्ध के लिए आधार प्रदान करता है, गलत है । वस्तुतः यह समाजवादी क्रांति, विद्रोह के लिए आधार प्रदान करता है ।

इसी तरह विशाल भू-भाग होने या जंगल-पहाड़ होने से ही क्रांति दीर्घकालीन लोक युद्ध नहीं हो जाती । बल्कि दीर्घकालीन लोक युद्ध की स्थिति होने पर यह बहुत मदद करता है। यह कारण नहीं, सहायक कारक (helping factor) है । फरवरी क्रांति के समय रूस में भी विशाल भूभाग, जंगल व पहाड़ थे। पर इससे वहां क्रांति दीर्घकालीन लोक युद्ध नहीं हो गयी ।

सभी जानते हैं कि चीन में लाल सत्ता कायम होने – आधार क्षेत्र कायम होने का एक प्रमुख कारण युद्ध सरदारों का आपसी युद्ध व केन्द्रीय सत्ता के पूरे देश पर आधिपत्य का अभाव था । बल्कि कहा जाए तो यह केन्द्रीय कारण था । हमारे देश में यह कारण बिलकुल गायब है । ऐसे में दीर्घकालीन लोक युद्ध के प्रस्तोताओं को किसी न किसी तरह से साबित करना होता है कि भारतीय शासक वर्गों में भी ऐसी ही फूट होगी और यह आधार क्षेत्र कायम करने में मदद करेगी । इस मामले में पीपुल्स वार तर्क देता है कि अर्ध औपनिवेशिक भारत पर कब्जे के लिए प्रयास साम्राज्यवादियों के बीच आपसी कलह को जन्म देता है। यह कलह भारतीय शासकों के बीच भी कलह पैदा करेगा । भारतीय शासक वर्गों के बीच यह तीव्र आपसी झगड़ा दीर्घकालीन लोक युद्ध को विकसित करने में मदद करेगा ।

यह सच है कि भारतीय शासक वर्गों के बीच कुछ मतभेद है जैसा कि शासकों (वह भी पूंजीवादी शासकों) में हमेशा होते हैं । यह भी सच कि उनकी राजनीतिक पार्टियों में और ज्यादा मतभेद हैं । लेकिन पहले तो यह कि इन मतभेदों का साम्राज्यवादी धड़ों से कोई संबंध नहीं है दूसरे यह कि देश-विदेश की मूलभूत नीतियों व जनता के दमन में इनकी पूर्ण एकता है। जरा नयी आर्थिक नीति और कश्मीर तथा पाकिस्तान के मामलों में इनकी अद्भुत एकता तो देखिए ! कोई कह सकता है कि इनकी यह एकता तात्कालिक है, बाद में यह झगड़े में बदल जाएगी । लेकिन तब हम पूछेंगे कि वह झगड़ा समूचे शासक वर्ग को कमजोर कर और जनता की नजरों में उसे गिराकर विद्रोह के लिए मार्ग क्यों नहीं प्रशस्त करेगा? क्यों वह दीर्घकालीन लोक युद्ध के लिए ही रास्ता खोलेगा ?

कुल मिलाकर ये सारी बातें यह साबित नहीं करतीं कि भारत में क्रांति दीर्घकालीन लोक युद्ध के रास्ते होगी । इसके मुकाबले, भले ही आप जनवादी क्रांति की बात करें, आम विद्रोह का रास्ता ज्यादा मौजूं दिखता है ।

2. दूसरी विशेषता के बारे में पीपुल्स वार कहता है:

"दूसरी प्रधान विशेषता यह है कि एक केन्द्रीकृत राज्य मशीनरी से युक्त

दुश्मन बड़ा और शक्तिशाली है तथा उसके पास संचार नेटवर्क व आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित आधुनिक सेना है और विभिन्न राज्य सरकारों के पास अर्ध सैनिक और अन्य बल हैं जो भारत के क्रांतिकारी युद्ध में शीघ्र विजय को दूर कर देती है ।"

('Strategy and Tactics', page-26, अनुवाद हमारा)

इस विशेषता को चिन्हित करने के बाद पीपुल्स वार कहता है कि इसके कारण हमें शुरूआत शत्रु के सबसे कमजोर बिन्दु –विशाल पिछड़े देहाती इलाकों से करनी होगी तथा दुश्मन की ताकत को टुकड़ों-टुकड़ों में नष्ट करना होगा । यह विशेषता पीपुल्स वार के लिए, और दीर्घकालीन लोक युद्ध की बात करने वाले सभी लोगों के लिए भारी परेशानी पैदा करती है । चीनी क्रांति की विशेषता ही यह थी कि वहां एक केन्द्रीकृत राज्य सत्ता नहीं थी । केन्द्र की सत्ता का प्रदेशों पर आधिपत्य नहीं था। वहां युद्ध सरदार हावी थे और वे आपस में तथा केन्द्र सरकार से लड़ते रहते थे । हालांकि केंद्रीय सरकार के पास बड़ी सेना थी पर वह संचार साधनों से लैस नहीं थी और न सही तरह से प्रशिक्षित । वह लाखों लोगों का जमावड़ा थी । लेकिन भारत में स्थिति बिलकुल उल्टी है जैसा कि पीपुल्स वार स्वयं वर्णन करता है ।

ऐसे में आप चाहे जितने भी पिछड़े देहाती इलाके में चले जाएं या चाहे जितना इसे खुरचते रहें, आप इसका कुछ खास नहीं बिगाड़ सकते । केवल समूची जनता का एक साथ आम विद्रोह ही इस आधुनिक सेना को पहले निश्चल और फिर विघटित कर सकता है । यह केन्द्रीकृत राज्य मशीनरी व आधुनिक सेना इसी तरह निष्प्रभावी हो सकती है । इस तरह केंद्रीकृत राज्य सत्ता व आधुनिक सेना की मौजूदगी ही यह साबित करती है कि दीर्घकालीन लोक युद्ध के बदले आम बगावत का रास्ता भारतीय क्रांति का रास्ता होगा ।

कुछ भले लोग यह तर्क देते हैं कि दुश्मन इतना मजबूत है कि उसे धीमे-धीमे, टुकड़ों-टुकड़ों में कुतर कर ही नष्ट किया जा सकता है । हम यह कहेंगे कि ये लोग चित भी मेरी, पट भी मेरी वाली कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं । यदि दुश्मन कमजोर और बिखरा हुआ हो, तो ये कहेंगे कि यह दीर्घकालीन लोक युद्ध के लिए सबसे अच्छी स्थिति है (चीन) की तरह। लेकिन जब दुश्मन मजबूत व केन्द्रीकृत हो तो ये कहेंगे कि केवल दीर्घकालीन लोक युद्ध के जरिए ही इसे धीमे-धीमे नष्ट किया जा सकता है । ऐसे लोगों से तर्क में कोई नहीं जीत सकता । ऐसे लोगों के लिए हर स्थिति उन्हीं की बात साबित करती है ।

3. तीसरी विशेषता कम्युनिस्ट पार्टी की कमजोरी है । क्रांति के रास्ते को तय करने में इस कमजोरी की कोई भूमिका नहीं है । हां, आज हमारे रणनीति और रणकौशल व्यवहार में कैसे लागू होंगे, वह यह तय करती है, चाहे क्रांति का रास्ता कोई भी क्यों न हो।

4. चौथी विशेषता देश में राष्ट्रीयताओं के सशक्त आंदोलन की है । लेकिन इस मामले में हम यही कहेंगे कि राष्ट्रीयता के ये आंदोलन केंद्र सरकार को कमजोर कर विद्रोह व दीर्घकालीन लोक युद्ध दोनों ही रास्तों के लिए एक समान सहायता प्रदान करते हैं । ये भारतीय क्रांति के रास्ते को तय नहीं करते । प्रसंगवश, राष्ट्रीयता के इतने दिनों से चलने वाले और इतने सशक्त आंदोलन भी, जिन्हें कहीं कहीं समूची आबादी (मसलन कश्मीर) का समर्थन प्राप्त है, अपना "आधार क्षेत्र" यानि केन्द्रीय सत्ता को समाप्त कर अपनी एक क्षेत्रीय सत्ता स्थापित नहीं कर सके। अधिक से अधिक वे गुरिल्ला कार्यवाहियां ही कर सके ।

5. पांचवीं विशेषता यह है कि साम्राज्यवाद का संकट बढ़ रहा है और सभी बुनियादी अंतर्विरोध तीखे हो रहे हैं। लेकिन यह विशेषता क्रांति के रास्ते को तय नहीं करती यह दोनों रास्तों के लिए एक समान बेहतर स्थिति प्रदान करती है ।

ऐसा नहीं कि पीपुल्स वार को उसके दीर्घकालीन लोक युद्ध के रास्ते पर उठाई गई हमारी आपत्तियों का पता नहीं है। उसे इन आपत्तियों के बारे में पता है लेकिन उसके

पास इनका कोई जवाब नहीं है । बस वह हठ पूर्वक अपनी बात पर अड़ा रहता है । इसे देखिए:

> "परन्तु कुछ लोग तर्क देते हैं कि भारत में आधार इलाकों की स्थापना करना, लाल सेना का निर्माण करना और दीर्घकालीन लोक युद्ध चलाना असंभव है क्योंकि भारत में अपेक्षाकृत अधिक औद्योगिक विकास हुआ है, कृषि में पूंजीवादी संबंध अधिक हैं और यातायात तथा संचार की बेहतर सुविधाएं हैं और कि भारत सरकार के पास एक मजबूत केन्द्रीकृत प्रशासन सहित एक बहुत बड़ी आधुनिक सेना है । ये तर्क गलत हैं। दुश्मन के लिए अनुकूल विषयों का ध्यान रखते हुए दीर्घकालीन लोक युद्ध चलाने के दौरान हमें बहुत सारी सावधानियां बरतनी एवं मुनासिब कार्यनीतियां अपनानी होंगी । छापामार क्षेत्रों को लम्बे समय तक सुरक्षित रखकर आधार इलाके स्थापित करने होंगे तथा यह भी दिमाग में रखना होगा कि एक के बाद एक जल्दी-जल्दी आधार क्षेत्र का निर्माण करना संभव नहीं है। हमें जन कार्यदिशा को आधार बनाकर जनता को ज्यादा निपुणता एवं सावधानी से वर्ग-संघर्ष में लामबन्द करना होगा । इस प्रकार दुश्मन के लिए अनुकूल स्थितियां भारतीय क्रांतिकारी युद्ध की दीर्घकालीन प्रकृति को नहीं बदल सकती । भारतीय क्रांतिकारी युद्ध की दीर्घकालीन प्रकृति, हमारे देश की प्रधान विशेषताओं में से तथा साथ ही चीनी और रूसी क्रांतियों से ली गई शिक्षाओं में से निकलती हैं ।" (वही, page-29-30, अनुवाद हमारा)

यहां हम देखते हैं कि पीपुल्स वार के पास हमारी आपत्तियों का कोई जवाब नहीं है। बल्कि वह जवाब देने का प्रयास भी नहीं करता । इसके बदले वह यह बताना शुरू कर देता है कि इन स्थितियों में दीर्घकालीन लोक युद्ध में क्या सावधानियां बरतनी पड़ेंगी और क्या तरीके अपनाने पड़ेंगे । जो कुछ वह सावधानियों इत्यादि के नाम पर गिनाता है वह, वस्तुतः, वस्तुगत यथार्थ के सामने आत्म समर्पण है, यथार्थ के दबाव में अपने रास्ते का स्थगन है । ऐसा करते हुए तो कोई किसी भी रास्ते पर चलता रह सकता है, पर ऐसा रास्ता किसी मंजिल पर कभी नहीं पहुंचेगा ।

उपरोक्त उद्धरण में पीपुल्स वार व्यर्थ ही रूसी व चीनी अनुभवों से सीखने की बात करता है । भारत की परिस्थितियां चीन से बिलकुल भिन्न हैं । रही रूसी क्रांति से सीखने की बात हो तो रूस की बुर्जुआ जनवादी क्रांति आम बगावत के जरिए सम्पन्न हुयी थीं, देश की जनसंख्या में बहुत कम मजदूरों की बगावत के जरिए, न कि दीर्घकालीन लोक युद्ध के रास्ते ।

अतः हमें देश के सबसे पिछड़े इलाकों, जहां सामंती उत्पीड़न सबसे ज्यादा है, में केन्द्रित करने के बदले, जैसा करने की बात पीपुल्स वार कहता है, देश के सबसे विकसित केन्द्रों औद्योगिक क्षेत्रों व शहरों को अपने काम का केन्द्र बिन्दु बनाना चाहिए । इसके साथ ही देहातों में भी काम करते हुए आम बगावत की तैयारी करना ही भारत में क्रांति का सही रास्ता होगा ।

IV

कुछ अन्य प्रश्न

भारतीय क्रांति के इन मूलभूत सवालों के बाद हम दो छोटे-छोटे बिन्दुओं को लेते हैं जिनमें पीपुल्स वार सही लाइन से भटकाव का परिचय दे रहा है। ये हैं: (1) औरतों, दलितों, आदिवासियों का सवाल, (2) व्यक्तिगत आतंकवाद का सवाल।

1. औरतों, दलितों और आदिवासियों के मामले में इस कांग्रेस ने जो दस्तावेज व प्रस्ताव पारित किये हैं, उन सभी की एक खास विशेषता यह है कि उनमें वर्गीय दृष्टिकोण धूमिल है । ऐसा लगता है कि समाज में इस समय दिखाई दे रही दलित, नारी चेतना का असर इस कांग्रेस पर भी पड़ा है और उसने इसकी वर्गीय चेतना पर कुछ असर डाला है।

इस कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया है, जिसका शीर्षक है "पार्टी में सभी स्तरों पर सर्वहाराओं और दलितों, स्त्रियों व आदिवासियों, खासकर बुनियादी वर्गों के, की भूमिका बढ़ाने के बारे में प्रस्ताव" । प्रस्ताव कहता है:

> "कांग्रेस ने बहस-मुबाहसे के बाद पार्टी में सभी स्तरों पर सर्वहारा वर्ग पृष्ठभूमि से, साथ ही साथ सामाजिक रूप से उत्पीड़ित तथा पिछड़े तबकों की पृष्ठभूमि, खासकर बुनियादी वर्गों से आने वाले कामरेडों की भूमिका को बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास करने की आवश्यकता महसूस की। 9वीं कांग्रेस प्रस्ताव करती है कि:
>
> "1. हम पहले तो यह नीति अपनाते हैं कि सर्वहारा तथा अन्य मेहनतकश जनता, जैसे गरीब व भूमिहीन किसान से आने वाले कामरेडों को पार्टी कतारों में भर्ती करने तथा उनकी नेतृत्वकारी पदों पर पदोन्नति करने में वरियता तथा महत्व प्रदान करेंगे । हमें पार्टी कतारों और नेतृत्वकारी स्तरों पर सामाजिक रूप से उत्पीड़ित तबकों जैसे दलितों, स्त्रियों व आदिवासियों, खासकर बुनियादी वर्गों से आने वाले, की भर्ती बढ़ाने का भी प्रयास करना चाहिए ।
>
> 2. दलितों, स्त्रियों और आदिवासियों के मामले में पार्टी शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए विशेष उपाय करेगी जिससे समाज के उत्पीड़न और भेदभाव से पैदा हुयी कमजोरी से वे उबर सकें।..." ('Resolutions', Page11-12, अनुवाद हमारा)

पहले प्रस्ताव का पहला भाग सही है और हर पार्टी संगठन को यही करना चाहिए। यही नहीं, इसमें पार्टी में सर्वहारा और खासकर औद्योगिक सर्वहारा की भर्ती पर और जोर दिया जाना चाहिए था। लेकिन दूसरा भाग ठीक नहीं है। भले ही आप "खासकर बुनियादी वर्गों से" जोड़ दें, लेकिन एक बार यदि आप दलितों, स्त्रियों व आदिवासियों की शब्दावली में बात करने लगे तो यह वर्गीय दृष्टिकोण को धूमिल करने लगती है । भारत की ये उत्पीड़नकारी सामाजिक संस्थाएं एक सच्चाई हैं। लेकिन साथ ही यह भी उतना ही बड़ा सच है कि भारतीय सर्वहारा का भारी हिस्सा दलितों - आदिवासियों से बनता है । यही नहीं दलितों-आदिवासियों का विशाल बहुमत सर्वहारा है या फिर गरीब किसान। ऐसे में सर्वहारा की बात करते ही इनके ये हिस्से स्वतः ही उसमें शामिल हो जाते हैं । इसी तरह उत्पीड़ित स्त्रियों का भारी हिस्सा (मध्यम व निम्न मध्यम वर्गीय स्त्रियों के अलावा) सर्वहारा का ही हिस्सा बनता है। यानि वे भी सर्वहारा की श्रेणी में हैं। ऐसे में क्यों न हम केवल सर्वहारा (साथ ही अर्ध सर्वहारा) से पार्टी में भरती पर जोर दें। हां, इसके बाद यह कहा जा सकता है कि सर्वहाराओं (साथ ही अर्ध सर्वहाराओं में भी) में जो दलित, महिला और आदिवासी हैं, उन पर विशेष ध्यान दिया जाए । और यह दिया जाना चाहिए ।

लेकिन प्रस्ताव ऐसा नहीं करता । वह सर्वहाराओं व बुनियादी वर्गों को एक ओर करता है और दलितों-नारियों-आदिवासियों को दूसरी तरफ। इस तरह वह पार्टी में भरती की दो अलग - अलग समस्याएं देखता है जबकि समस्या एक है - सर्वहाराओं की भर्ती की, तथा दूसरी इसका उपांग है - सर्वहाराओं में दलितों, महिलाओं व आदिवासियों की ।

दलितों, नारियों, आदिवासियों पर सर्वहारा (साथ ही अर्ध सर्वहारा भी) के एक और ज्यादा उत्पीड़ित हिस्से के तौर पर जोर देने के बदले उन पर सर्वहारा से अलग विशेष तबके के तौर पर जोर देना वर्गीय दृष्किोण को धूमिल करना है । यह पार्टी में आज समाज

में उपलब्ध सुझाव नहीं, दलित चेतना की ही अभिव्यक्ति, अपेक्षित दिशा की नहीं ।

चर्चे अपने ढंग का विशेष महत्वपूर्ण विश्लेषण है, उसका दो पहलू यह महत्व रखता है और इस दिशा में अनेक व एक पक्ष की दृष्टियों बहुत गंभीर परिणाम ला सकते हैं। और इन दोनों (दलित, मार्क्स, अम्बेडकर) पर इस आंदोलन के नेतृत्वकर्ता विन्यास का कारण करते हैं । इस दोनों पर चर्चे के आंदोलन में, राजनीतिक दलगत में तथा राष्ट्रीयता और राष्ट्रवादिता में बार-बार विचारा है बात की गई है । लेकिन हर जगह दलित दृष्टिकोण का बारीकी न्यायता उपयुक्त विश्लेषण है । इन जगह अलग तौर पर "दोनों", "महिलाओं" की बात की गई है। बारी की विचारा से इनकी दलित विचारधारा की बात नहीं की गई है। इस दलित के दिखा उपयुक्त है बातों बातें दलित और बातें स्त्रियां एक हैं और उनकी समस्याएं एक हैं। इनमें बातों की बारीकियां, पारम्परी, भाषा का कुशल महिलाओं आंदोलन का विश्व नहीं है । बस एक जगह कुशाग्रबुद्धियों से हालचाल पहले की बात की गई है ।

सम्भाई यह है कि महिलाएं आंदोलन में कहीं से विचारित नहीं हैं और इनकी विन्यास का केन्द्र मनुष्य व अन्य विचारधारा महिलाएं होनी चाहिए। इसी तरह महिलाओं में इस अवस्था सामन्त विचारधारा कुशल है। महिलाओं में इनकी विन्यास का केन्द्र सर्वहारा होना चाहिए, बारीकियां व पारम्परी नहीं । दोनों तरह कुशलता व देशी कुशलता जैसे पैदा हुआ है महिलाओं में इनका पैदा होना अपने आप में एक परिवारवाद है, लेकिन पेरियार का यही इस आंदोलन के कार्यकर्ताओं में इस परिवारवाद का शिकार नहीं है। हो सकता है, यह इसलिए न हो कि इस परिवारवाद की रक्षा में चर्चे हो उन्हें भारत के पूंजीवादी विकास को स्वीकार करना पड़ेगा। जो हो, महिलाओं - महिलाओं का वर्गीय विश्लेषण बड़ा महत्वपूर्ण है ।

महिलाएं – महिलाओं में वर्गीय विश्लेषण के सही अंतक व उन्हें बातों में बातों करने एक ओर, यह पालक संदेश है जो दोनों में चर्चे चलाकर्ताओं को कम है समझा है ।

अपने इसी संदेश के साथ पेरियार दो नये लक्ष्यों द्वारा के साथ महिलाएं-महिलाओं को आंदोलन देने की बात करता है । यह कुशलताओं विचारों को ही देन चाहिए ।

2. दूसरा संदर्भ आंदोलनकार है । पेरियार बार अपनी सभाओं में बार-बार दुहराता है कि यह कम दिशा एक आंदोलन करता है । पर कुछ चर्चे का ऐसी धारा है जो इस वर्गीकरण का विरोध करती है और निरंतर आंदोलनकारी कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित करती है । 'दलनीति और दलनीतिज्ञ' एक लेख बताता है:

> "...अपना स्वीकारों और अपनाने के लिए आप दुनिया के लोगों के क्या से काम करते हैं । इन सभी समुदायों और परिवारों/व्यक्तियों को अपनाकुशल बनाने के लिए आपने में विशेषज्ञता एवं अलग कार्यकलापों की आवश्यकता है ताकि स्वतंत्र परिवारों को यह सभी का काम हो जा सके । और इसी विशेष प्रशिक्षण लिया जाना चाहिए । लेकिन अभी यह काम इस तरह नहीं चाहिए कि आपने और कम्पनी में मेलजोल काम करना होने के लिए कम्पनी से प्रशिक्षित होकर आए के काम करना स्वतंत्र है लिया नहीं होना चाहिए ।..." (Strategy & Tactics!, page-15, अनुवाद हमारा)

चर्चे आंदोलनों के बावजूद होने का उन्हें लगता होने की यह नीति अपनाने से आंदोलन-संगठन कार्यकर्ताओं का काम हो सकती है। चर्चे का कार्यकर्ता पूर्णत: तैयारी के द्वारा किया जाना चाहिए। उनका के आंदोलनों में आंदोलन चाहिए हैं को लिया जाता चाहिए, लेकिन यह इस तरह से नहीं चाहिए उसमें आंदोलन कुछ विशेषज्ञता चाहिए की (दिखें, चाहिए की दुनिया के विकास आंदोलन की रिपोर्ट)। आखिरकार ये चर्चे पेरियार बार द्वारा की जाने वाली इस तरह की आंदोलनकारी कार्यकर्ताओं के बीच इस सूझबूझ और दोष से विशिष्ट है। लेकिन इस तरह की आंदोलनकारी परिवर्तनकारी, कुशल नियोजन, आंदोलनात्मक आंदोलन की पुनर्स्थापना की

पहचानने है, बताए नहीं करते।

पेरियार बार ने बारीकियों में एकमात्र विशेष रिपोर्टों में एक बात स्वीकारा की है। अपने विशेष रिपोर्टों में बताया है कि

> "चाहक और कार्यकर्ता में से कम्पनी का विचार कर रहे हैं उसीका आपके अनेक, उनकी विचारधारा, दलनीतिज्ञता तथा विचार में से बहुत का एक हिस्सा का विचार के आंदोलन के मुख्यमंत्री आपने कम्पनी के कम्पनी बना रहे हैं।" (Revolutionary, page-21, अनुवाद हमारा)

इसी के साथ यह भी है:

"आपसी-भाषा एक का मुख्य भाषण कम्पनी चर्चे चाहक का विचार कर रहे हैं।"

पेरियार बार ने इस बात कोई कारण नहीं बताया है (आखिर यह सांगठनिक रिपोर्ट में रहे, जो छपाई नहीं की गई है)। लेकिन यह विश्वास है कि कुछ विशेषज्ञ चर्चे की कम्पनी का विचारधारा बना हो रही है तथा अपने लक्ष्य बना पर बढ़ रही है (अपने द्वारा आयोजित विशेष का रहे दृष्टांतों में आप केवल आपके बाद के दिखाए से समझते हैं)। महत्वपूर्ण बात यह है कि जहां आपने बात नहीं है, वहां चर्चे आपका का विचार है-संगठन, सौहार्दपूर्ण की लेकिन जहां आपने है, वहां का आपका का विचार होने के कारण आपने बात का विचार है। यहां तक कि कम्पनी की कम्पनी का विचार होने के कारण चर्चे का और एक हाथ से आंदोलनकार से आपने बात बात का विचार है। पेरियार बार की राजनीतिक में यह अपेक्षित व्यवहार कि चर्चे दूसरी बीच राजनीतिक नीति में हो रही है? कम से कम यह चर्चे जब दिशा की आंदोलन में कमजोर करने की अभिव्यक्ति हो रही है।

V

एकीकृत अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का सवाल

अब हम एक अंतिम प्रश्न को लेते हैं। यह है देश में एक एकीकृत अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण का प्रश्न। इस संबंध में पेरियार बार द्वारा कुछ की पार्टी घोषित बार देने तथा भारत में सशस्त्र कम्युनिस्ट आंदोलन की परंपरा का संक्षिप्त होने का जिक्र करने पर हम पहले ही कुछ चर्चे कर चुके हैं। अब यहां हम कुछ और करेंगे।

पेरियार बार द्वारा चर्चे के लिए चाहे इस कांग्रेस के दस्तावेजों में देश में कम्युनिस्ट आंदोलन को एक करने पर कुछ भी नहीं है- सिवाय दो लाइनों के। हां इतना है, इस पार्टनर में सांगठनिक रिपोर्ट में चर्चे हो पर का उल्लेख आंदोलन है जो चर्चे के लिए घोषित है, यह नया इसका है:

> "चर्चे के चाहने एक आम कार्यक्रम है सभी देश में सभी कांग्रेसों सम्मेलनों (सम्मेलनों और महिलाओं) की एक सरकार" (Strategy and Tactics, Page-42, अनुवाद हमारा)

पर यह कार्यक्रम कैसे कुछ होना चाहिए और उसे कुछ करने का उसका दृष्टिकोण क्या है, इस पर पेरियार बार कुछ नहीं बताता।

पेरियार बार ने अपनी यह कांग्रेस पिछली कांग्रेस के 31 वर्ष बाद की है। इस 31 वर्षों में भारत का कम्युनिस्ट आंदोलनों चर्चे में टूट-फूट व विभाजन की श्रृंखलाएं रहा है। कांग्रेसों आंदोलन चर्चे उतार-चढ़ाव से गुजरा है। इसी बीच एकता के भी कई प्रयास हुए हैं। परन्तु यह कांग्रेस पिछले 31 वर्षों का कोई मूल्यांकन नहीं देश चर्चे की वर्तमान एवं एकता एक आंदोलन संगठन कांग्रेस पर इस कांग्रेस का इस प्रश्न पर यह रुख पिछले से लगा एक गंभीर प्रयास नहीं कहा जा सकता।

इसी तरह पेरियार बार ने इन संगठनों को भी, जिन्हें वह कम्युनिस्ट आंदोलनों

मानता है, बिना एक झंडे तले लाये खुद को पार्टी घोषित कर दिया और उसकी कांग्रेस कर उसे 9 वीं कांग्रेस का नाम दे दिया। पीपुल्स वार इस बात का कोई जवाब नहीं दे सकता कि इसकी कांग्रेस को 9वीं कांग्रेस घोषित कर देने के बाद ये क्रांतिकारी संगठन कैसे एकताबद्ध किये जा सकेंगे सिवाय इसके कि वे इस नवीं कांग्रेस को स्वीकार कर अपने को उसमें समाहित कर दें। खुद पीपुल्स वार की नजर में इन क्रांतिकारी संगठनों के प्रति उसका यह रूख क्या अत्यंत संकीर्णतावादी और बड़ा संगठन होने के दंभ का परिचायक नहीं है। क्या यह संयोगवश है कि पीपुल्स वार इन संगठनों को एकताबद्ध करने की कोई योजना या कार्यदिशा पेश नहीं करता?

वस्तुतः इस नवीं कांग्रेस का आयोजन कामरेड चारू मजुमदार के नेतृत्व में हुयी सीपीआई (एम एल) की समय पूर्व, जल्दीबाजी में की गई स्थापना और उसके बाद की गई आठवीं कांग्रेस की गलती का सिलसिला है।

नक्सलबाड़ी किसान उभार के बाद सीपीआई (एम) के नवसंशोधनवादी नेतृत्व के विरूद्ध विद्रोह करके सीपीआई (एम) के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने मिलकर नवंबर 1967 में अखिल भारतीय तालमेल कमेटी गठित की थी। इस तालमेल कमेटी ने सभी स्तरों पर मेहनतकश आवाम के जुझारू व क्रांतिकारी संघर्षों को, विशेष तौर पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व में नक्सलबाड़ी किस्म के किसान संघर्ष विकसित करने का, मजदूर वर्ग व अन्य मेहनतकश अवाम के जुझारू व क्रांतिकारी संघर्षों को विकसित करने, अर्थवाद पर प्रहार करने और इन सभी संघर्षों को भूमि क्रांति की ओर मोड़ने का, संशोधनवाद व नव-संशोधनवाद के विरूद्ध समझौता विहीन विचारधारात्मक संघर्ष चलाने और माओ विचारधारा का प्रचार-प्रसार करने का तथा माओ विचारधारा की रोशनी में भारतीय परिस्थितियों के ठोस विश्लेषण पर आधारित क्रांतिकारी कार्यक्रम व कार्यनीतिक लाइन की तैयारी के काम का अपने सामने उद्देश्य रखा था। इसके ठीक छः महीने बाद मई, 1968 में इस कमेटी ने अपना नाम बदलकर कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की अखिल भारतीय तालमेल कमेटी (ए.आई.सी.सी.आर.) करते हुए अपनी दूसरी घोषणा में इससे बाहर के सभी क्रांतिकारी ग्रुपों को ग्रुप के तौर पर भंग करने की गलत मांग पेश कर दी। इस प्रकार ए.आई.सी.सी.आर. का इस्तेमाल तालमेल कमेटी के बजाय पार्टी केन्द्र के बतौर किया जाने लगा। अक्टूबर 1968 में हुई ए.आई.सी.सी.आर. की बैठक में आंध्र प्रदेश तालमेल कमेटी को शामिल किया गया तथा फरवरी 1969 में नौकरशहाना तथा मनमाने तरीके से आध्र प्रदेश कमेटी को ए.आई.सी.सी.आर. से बाहर कर दिया गया। इसके तत्काल बाद 22 अप्रैल 1969 को सी.पी.आई. (एम. एल.) का गठन कर दिया गया। इस प्रकार तालमेल कमेटी ने अपने लिए जो कार्यभार निर्धारित किये थे उनको पूरा किए बगैर और देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के एक हिस्से को गलत, नौकरशहाना और मनमाने तरीके से बाहर रखकर जिस सी.पी.आई. (एम. एल.) का गठन किया वह वस्तुतः कम्युनिस्ट पार्टी नहीं थी बल्कि उस समय मौजूद कई कम्युनिस्ट ग्रुपों में एक ग्रुप मात्र थी। इसके गठन की प्रक्रिया में ही भावी टूट -फूटों और बिखरावों के सारे बीज निहित थे। यह उस समय राजनीतिक तौर पर मूलतः आतंकवादी कार्यदिशा पर अमल कर रही थी, जबकि सांगठनिक तौर पर संकीर्णतावाद पर। इसीलिए 1970 की आठवीं कांग्रेस के तत्काल बाद से ही यह टूट-फूट और बिखराव का शिकार होती चली गई।

सी.पी.आई. (एम. एल.) के पीपुल्स वार ग्रुप ने अपने को पार्टी घोषित करके और सी.पी.आई. (एम. एल.) की नवीं कांग्रेस करके उन्हीं पुरानी गलतियों को जारी रखा है। न तो इसने सी.पी.आई. (एम. एल.) के गठन की गलतियों से सबक लिया है और न ही उसकी आतंकवादी कार्यदिशा से स्पष्टतया सम्बन्ध विच्छेद किया है। इस नवीं कांग्रेस में कहीं

भी आतंकवादी कार्यदिशा और क्रांतिकारी जनदिशा के बीच उस समय जारी संघर्ष का जिक्र नहीं है और न ही अपने पिछले 31 वर्षों के अतीत का एक कम्युनिस्ट संगठन के बतौर जिम्मेदारी पूर्वक आंकलन व मूल्यांकन किया गया है। यह किसी न किसी रूप में आतंकवादी कार्यदिशा को जारी रखना है। 1974 में ए.पी.स्टेट कमेटी (पीपुल्स वार) की जिस आत्मालोचनात्मक रिपोर्ट का जिक्र देश के क्रांतिकारियों को एकजुट करने के आधार के बतौर किया जाता है, वह भी कुल मिलाकर आतंकवादी कार्यदिशा और जनदिशा की खिचड़ी पकाने की कोशिश थी। उसमें भी, भारतीय क्रांति को प्रतिक्रांति का मुकाबला करते हुए दिखाकर बढ़ा-चढ़ाकर क्रांतिकारी परिस्थितियों का चित्रण किया गया था।

हालांकि इस कांग्रेस मे दावा किया गया है कि विगत 30 वर्षों के अनुभव और गहन अध्ययन के आधार पर इसने रणनीति-कार्यनीति, पार्टी कार्यक्रम और संविधान को समृद्ध बनाया है, लेकिन हकीकत यह है कि नवीं कांग्रेस में मूलतः गलत विश्लेषण पर आधारित कार्यक्रम अपनाया गया है तथा उसी गलत कार्यक्रम के अनुरूप गलत रणनीति-कार्यनीति अपनायी गई है ।

देश के भीतर इसी गलत कार्यक्रम और रणनीति - कार्यनीति पर आधारित कई कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुप मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त कार्यक्रम का मसला अभी अनिर्णित है। इन सभी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुपों को बाहर रखते हुए तथा कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुपों के बीच बगैर भारतीय समाज व्यवस्था, राज्यसत्ता के चरित्र, क्रांति की मंजिल, भारतीय समाज के बुनियादी और प्रधान अंतर्विरोध के निर्धारण के लिए सही बहस-मुबाहसे की पद्धति को अपनाते हुए अपने को कम्युनिस्ट पार्टी के बतौर पेश कर देना उसी संकीर्णतावादी गलती का सिलसिला है जो कामरेड चारू मजुमदार के नेतृत्व में की गई थी।

प्रथमतया, यह इस वास्तविकता से इंकार करना है कि सी.पी.आई. (एम.एल.) पीपुल्स वार महज एक ग्रुप है। दूसरे, देश के अधिकांश कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों को यह नवीं कांग्रेस अपने साथ लाने में असफल रही है। इसके बावजूद अपने को अखिल भारतीय पैमाने पर कम्युनिस्ट पार्टी घोषित करके कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों के बीच कार्यक्रम, रणनीति-कार्यनीति और सांगठनिक नीति पर मौजूद मतभेदों को स्वस्थ तरीके से हल करने के रास्ते में बाधा बन गई है। तीसरे, पिछले 30 वर्षों के अनुभव यह नहीं साबित करते कि विभिन्न कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों की राजनीतिक लाइनों में से कौन सी सही है – न तो सैद्धान्तिक बहस मुबाहसे में और न ही सामाजिक व्यवहार में – ऐसी हालत में सभी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन निश्चित रूप रंग अख्तियार करने की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं । इनमें से कोई भी ऐसी स्थिति में नहीं है कि वह अपने को कम्युनिस्ट पार्टी कह सके। सी.पी.आई. (एम. एल.) पीपुल्स वार भी कतई ऐसी स्थिति में नहीं है।

VI

पीपुल्स वार के दस्तावेजों के उपरोक्त विश्लेषण से साफ बात निकलती है कि भले ही यह अपने संगठन को भारतीय क्रांति का नेता घोषित करे, पर यह अपने कार्यक्रम, रणनीति, रणकौशल में बेतरह अंतर्विरोधी बातों से ग्रस्त हैं । अक्सर ही ये अतंर्विरोध असमाधेय हैं । यह इस कारण है कि वह सारे कुछ के बावजूद भारत के अर्ध-सामंती अर्ध - औपनिवेशिक होने की स्वयं सिद्ध प्रस्थापना से प्रस्थान करता है। यह पुरानी पड़ चुकी प्रस्थापना आज की सच्चाइयों से मेल नहीं खाती और पीपुल्स वार को अंतर्विरोधी बातों के जंगल में ढकेल देती है । इन अंतर्विरोध से उसे मुक्ति तभी मिल सकती है जब वह भारत

को एक पूंजीवादी समाज मान ले और समाजवादी क्रांति को अपना लक्ष्य घोषित कर दें।

अंत में हम स्पष्ट करना चाहेंगे कि पीपुल्स वार की इस कांग्रेस की अवस्थितियों की आलोचना करने का हमारा उद्देश्य है कि यह संगठन अपनी गलत अवस्थितियों से मुक्त हो तथा सही कार्यक्रम, रणनीति-कार्यनीति पर आधारित एक अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण का 'मार्ग प्रशस्त हो । केवल इस तरह की आलोचना - प्रत्यालोचना तथा बहस - मुबाहसे के जरिये ही एक सही और सर्व सम्मत अवस्थिति तक पहुंचा जा सकता है जो कि अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण की पूर्वशर्त है । इसी भावना में हम यह नोट करना चाहेंगे कि पीपुल्स वार की इस कांग्रेस ने कुछ सकारात्मक कदम उठाये हैं । जन दिशा पर जोर देना, शहरों में और खासकर औद्योगिक मजदूर वर्ग के बीच काम को महत्वपूर्ण मानते हुए उस पर पहले से ज्यादा जोर देना इसी तरह के सकारात्मक कदम हैं । इसी तरह देश के कुछ देहाती हिस्सों में पूंजीवाद की मौजूदगी तथा भारतीय पूंजीपति वर्ग व भारतीय जनता के बीच एक स्वतंत्र बुनियादी अंतर्विरोध की मौजूदगी को स्वीकार करना उसके द्वारा अपनी सैद्धान्तिक अवस्थितियों में वह महत्वपूर्ण परिवर्तन करना है जिसकी दिशा सकारात्मक है तथा जिसे यदि सही तरीके से आगे बढ़ाया जाए तो यह उसे सही अवस्थिति तक पहुंचा सकती है। अपनी सैद्धान्तिक अवस्थिति में पीपुल्स वार के इस परिवर्तन का हम स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि पीपुल्स वार इसे इसकी तार्किक परिणति तक पहुंचाएगा।

❑ ❑ ❑